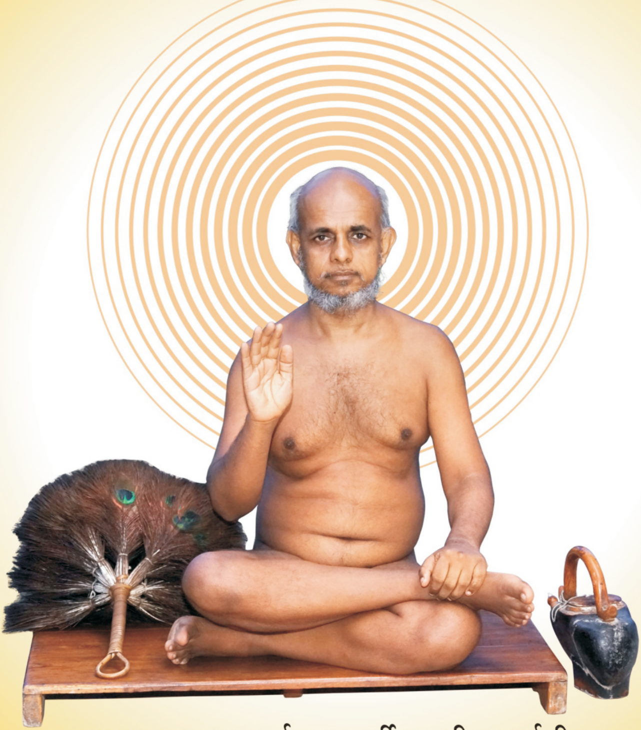

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्त्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनसाहित्य में कृष्ण

लेखक

डॉक्टर महावीर कोटिया

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

(परम्परानायक)

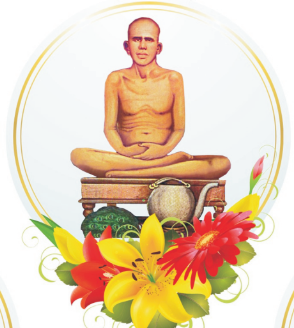

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

समर्पण

कृष्ण
भारत भू पर हजारो वर्ष पहले हुए,
पर उनके प्रति
भारतीय जन की श्रद्धा और प्रेम ने
'कृष्ण' संज्ञा को
अत्यन्त लोक प्रिय बना दिया।
तब से आज तक
इस देश के
हर गाँव-शहर मे
गली-मुहल्ले मे
अनेक कृष्ण, कन्हैया, गोपाल, गोविन्द
होते रहे हैं
और समय की सड़क पर चलते हुए
गुजर गये हैं।
इन अनगिनत मे एक थे
मेरे दिवगत पूज्य पिता
श्री कन्हैया लाल जैन
अद्भुत कर्मशील, स्वाभिमानी
और ईमानदार
'एकला चलो रे' का
जीवन भर प्रण निभाते हुए,
उन्ही को सादर समर्पित है
कृष्ण चरित से सम्बन्धित यह पुस्तक!

—महावीर कोटिया

प्राक्कथन

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे परम्परागत जैन साहित्य प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। इस साहित्य मे ऐसी अनेक कृतियाँ हैं जिनमे कृष्ण वासुदेव का चरितवर्णन हुआ है। कृष्ण वासुदेव से सम्बन्धित यह परम्परागत साहित्य प्राय. अधिकाश के लिए आज भी अपरिचित है। प्रस्तुत कृति मे जैन परम्परागत कृष्ण साहित्य और उसमे वर्णित कृष्णचरित के स्वरूप के उद्‌घाटन का प्रयास है। कृति की विषय वस्तु पाँच अध्यायो मे विभक्त है। इसमें न केवल सम्बन्धित विषय सामग्री ही प्रस्तुत की गयी है अपितु साथ मे यथावश्यक उसका तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन व विश्लेषण भी है। आशा है, जैन साहित्य मे कृष्णचरित वर्णन की पृष्ठभूमि और उसके स्वरूप का परिचय इससे पाठको को हो सकेगा।

जैन परम्परागत साहित्य मे कृष्ण का एक विशिष्ट स्वरूप है और वह है उनका शलाकापुरुष वासुदेव का रूप। अपने वासुदेव रूप वे एक अप्रतिम वीर, महान् शक्तिसम्पन्न राजा, द्वारिका के अधिपति तथा आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत विशिष्ट महापुरुष हैं। उनका गोपीजन-प्रिय एव रास-क्रीडाओ के नायक लीला-पुरुषोत्तम का रूप जैन परम्परा मे अनभिज्ञ रहा है। कृष्ण के ऐतिहासिक स्वरूप के सन्धान की दृष्टि से यह विषय-सामग्री सुधीजन का ध्यान आकर्षित कर सके यह अपेक्षित है।

सन्दर्भों की अधिकता और जहाँ कहीं उनके विस्तार हो जाने से पुस्तक के अन्त मे उसकी सन्दर्भ तालिका दे दी गयी है।

प्रस्तुत विषय पर लिखने की प्रेरणा मूलत मुझे स्व० महेन्द्र जी (सचालक व सम्पादक 'साहित्य-सन्देश', आगरा) से मिली। पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर उनका पुण्य-स्मरण मेरा कर्तव्य है। मैंने इस विषय से सम्बन्धित अनेक लेख लिखे, जो पत्रिकाओ तथा स्मृति-ग्रन्थो मे प्रकाशित हुए है। 'जिनवाणी' मासिक, जयपुर मे इस विषय-सामग्री से सम्बन्धित कई लेख क्रमश प्रकाशित हुए थे। उन लेखो की सामग्री को देखकर मुझे डॉ० नरेन्द्र जी भानावत (एसोशिएट प्रोफ़ेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) ने प्रेरित किया कि मैं इस विषय सामग्री को आधार बनाकर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करूँ। फलत उनके आग्रह, अनुग्रह और निर्देशन मे मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर की पी० एच० डी० उपाधि हेतु

'जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप' विषय पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया। प्रस्तुत पुस्तक इसी शोधप्रबन्ध की विषय सामग्री पर आधारित है। विषय-सामग्री के इस रूप मे प्रस्तुतीकरण मे डॉ० भानावत की प्रेरणा प्रमुख रही है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ से इस पुस्तक का प्रकाशन होना मेरे लिए अत्यन्त सुखद सयोग है। मैं इसके लिए ज्ञानपीठ के निदेशक श्रीमान् लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा प्रकाशन अधिकारी डॉ० गुलाबचन्द्र जैन का बहुत आभारी हूँ।

कानपुर
फरवरी 18, 1984

—महावीर कोटिया

अनुक्रम

प्राक्कथन

१ कृष्ण-चरित वर्णन . पृष्ठभूमि १

कृष्ण शलाकापुरुष वासुदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव, वैष्णव पुराणो का पौण्ड्रक प्रसग, वासुदेव विरुद्ध स्वरूप, महाभारत मे कृष्ण का वासुदेव स्वरूप, जैन-परम्परा मे वासुदेव की विशिष्टता का वर्णन, कृष्ण वासुदेव और तीर्थंकर अरिष्टनेमि, छान्दोग्य उपनिषद् मे घोर आगिरस का उपदेश, अरिष्टनेमि और आंगिरस, निष्कर्ष । १०

२ कृष्णचरित सम्बन्धी जैन कृतियाँ

जैन साहित्य की परम्परा, आगम साहित्य, आगमेतर साहित्य, आगम साहित्य मे कृष्णचरित वर्णन की प्रवृतियाँ, कृष्णचरित सम्बन्धी आगमिक कृतियाँ, (समवायागसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृद्दशा, प्रश्नव्याकरण, निरयावलिका, उत्तराध्ययन), आगमेतर साहित्य मे कृष्णचरित वर्णन की प्रवृतियाँ, कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमेतर साहित्य (प्राकृत कृतियाँ, सस्कृत कृतियाँ, अपभ्र श कृतियाँ, हिन्दी कृतियाँ)

कृतिपरिचय—वसुदेव-हिण्डी, हरिवशपुराण, उत्तरपुराण, प्रद्युम्न-चरित, त्रिषष्टि-शलाकापुरुष-चरित, रिट्ठणेमिचरिउ, तिसट्ठिमहापुरिसगुणालकारु, णेमिणाहचरिउ, गयसुकुमालरास, प्रद्युम्नचरित (सधारू कवि), बलिभद्र चौपई, हरिवशपुराण (शालिवाहन—हिन्दी), नेमिश्वर रास, खुशालचन्द काला कृत हरिवशपुराण व उत्तरपुराण, नेमिचन्द्रिका ।

३ जैन साहित्य में कृष्णकथा . ४३

जैन कथा की प्राचीनता, जैनागमो मे कृष्णकथा, जैन कृष्णकथा का विकसित स्वरूप : हरिवशपुराण की कथा, जैन कृष्णकथा .

अवान्तर प्रसग, (अरिष्टनेमि चरित, गयसुकुमाल चरित, प्रद्युम्नचरित, पाण्डवचरित), जैन कृष्णकथा निष्कर्ष ।

४ जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप-वर्णन . . ५५

कृष्ण स्वरूप वर्णन दो आयाम, महान वीर व शक्तिसम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष (आगमिक व पौराणिक कृतियो में वर्णन का स्वरूप, हिन्दी कृतियो मे वर्णन का स्वरूप, आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष, आगमिक व पौराणिक कृतियो मे वर्णन का स्वरूप, हिन्दी कृतियो मे वर्णन का स्वरूप ।)

५ कृष्ण का बाल-गोपाल रूप . . ७४

जैन साहित्य मे कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश 1 नटखट व चपल ग्वाल बालक 2 कृष्ण का गोपाल वेश । कृष्ण के बाल-गोपाल रूप के स्रोत, जैन पौराणिक कृतियो मे कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का वर्णन । हिन्दी जैन साहित्य मे कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का वर्णन ।

सन्दर्भ-तालिका ८१

परिशिष्ट . ९१

(क) महाभारत की कृष्ण कथा
(ख) घट जातक की कृष्ण कथा
(ग) सन्दर्भ साहित्य ।

कृष्ण-चरित वर्णन : पृष्ठभूमि

•

कृष्ण-चरित क्षेत्र, काल और सम्प्रदाय की सीमाओ का अतिक्रमण कर व्यापक रूप से भारतीय जन-जीवन मे आकर्षण का केन्द्र रहा है। यही कारण है कि विभिन्न भारतीय भाषाओ और धार्मिक सम्प्रदायो के साहित्य में कृष्ण-चरित का अतिशय वर्णन उपलब्ध है। जैन परम्परा के साहित्य मे भी कृष्ण-चरित का वर्णन करने वाली अनेक कृतियाँ प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श, हिन्दी तथा अन्य कई आधुनिक भाषाओ मे उपलब्ध है। इस विशाल परम्परागत साहित्य की जानकारी होने पर यह स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि जैन परम्परा के इस साहित्य मे कृष्ण के चरित व व्यक्तित्व का वर्णन किस प्रकार हुआ है। सक्षेप मे इस जिज्ञासा की पूर्ति का प्रयत्न यहाँ किया गया है।

हम जानते है कि महाभारत, हरिवशपुराण तथा श्रीमद्भागवत-पुराण आदि प्राचीन एव प्रसिद्ध पौराणिक कृतियो मे वर्णित कृष्ण-चरित भारतीय जन-जीवन तथा भारतीय साहित्य पर अपना सुनिश्चित प्रभाव शताब्दियो से रखता चला आया है। इन कृतियो की परम्परा के कृष्ण-चरित की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे कृष्ण सामान्य मानव नही, अपितु स्वय देवाधिदेव भगवान् हैं और वे इस पृथ्वी पर मानव रूप मे अवतरित हुए हैं। उनके अवतरण का एक निश्चित उद्देश्य है, और वह है पृथ्वी पर उत्पन्न दुष्ट दैत्यों का सहार करना तथा धर्म की स्थापना करना। अत इस अपेक्षाकृत ज्ञात एव लोकप्रिय साहित्य मे कृष्ण-चरित का वर्णन प्रधानत भगवत्-लीला का वर्णन है और इस वर्णन मे अलौकिकता का महिमामय आवरण सर्वत्र द्रष्टव्य है। वे भगवान्, इन कृतियों मे तथा इनसे प्रभावित साहित्य मे, जो कुछ भी करते हुए वर्णित हैं, वह सब उनकी लीला है और श्रद्धालुजन उनके आगे नतमस्तक हैं। वैष्णव धार्मिक परम्परा का कृष्ण-साहित्य इस विशिष्टता का सर्वत्र सवाहक है।

परन्तु जैन परम्परागत साहित्य मे यह स्थिति भिन्न है। अवतारवाद की अवधारणा जैन-परम्परा मे मान्य नही है, अतः स्वाभाविक है कि जैन-साहित्य के कृष्ण न भगवान् के अवतार हैं और न ही स्वय भगवान् हैं। अपेक्षाकृत महापुरुषों (शलाका-पुरुषों) से सम्बन्धित जैन परम्परा की अपनी एक भिन्न अवधारणा

है। इस अवधारणा के अनुसार लोक मे विशिष्ट अतिशयों से सम्पन्न पुरुष काल क्रम से जन्म लेते रहते हैं। परम्परानुसार एक काल खण्ड[1] मे ऐसे त्रेषठ शलाका-पुरुष जन्म लेते हैं। इनकी त्रेषठ सख्या इस प्रकार है—तीर्थंकर चौबीस, चक्रवर्ती बारह, बलभद्र नौ, वासुदेव नौ, तथा प्रतिवासुदेव नौ।

त्रेषठ शलाका-पुरुषो[2] की सूची मे भारतभूमि के ज्ञात-अज्ञात पौराणिक पुरुषो के नाम है। इसमे जैन परम्परा मे मान्य चौबीस तीर्थंकरो के अतिरिक्त जो अधिक ज्ञात नाम हैं, वे हैं—भरत, राम, लक्ष्मण, रावण, कृष्ण, बलराम, तथा जरासन्ध। इसमे भरत का नाम चक्रवर्ती शलाका-पुरुषो मे है।

वासुदेव, प्रतिवासुदेव तथा बलभद्र—इन तीन कोटि के शलाका-पुरुषो की निश्चित सख्या नौ-नौ है। इसमे वासुदेव और प्रतिवासुदेव परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। बलभद्र वासुदेव का अग्रज होता है। त्रेषठ शलाकापुरुषो की गणना मे कृष्ण नवम वासुदेव हैं, उनका प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध नवम प्रतिवासुदेव है तथा बलराम नवम बलभद्र है।

कृष्ण शलाकापुरुष वासुदेव

इस प्रकार जैन मान्यता मे कृष्ण शलाका-पुरुष वासुदेव है। परम्परानुसार वासुदेव अर्द्ध-चक्रवर्ती राजा होता है। जैन ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' मे भारतभूमि के छह खण्ड कहे गये है। विन्ध्याचल से ऊपर उत्तर भारत के तीन खण्ड तथा दक्षिण भारत के तीन खण्ड।[3] जिस शक्तिशाली राजा का भरतक्षेत्र के सम्पूर्ण छह खण्डो पर प्रभाव व प्रभुत्व हो, वह चक्रवर्ती शलाका-पुरुष कहा गया है तथा जिसका आधे भरत क्षेत्र पर अर्थात् तीन खण्डो पर प्रभाव व प्रभुत्व हो वह अर्द्ध-चक्रवर्ती अर्थात् वासुदेव शलाका-पुरुष कहा गया है। प्रतिवासुदेव भी वासुदेव के समान ही प्रभाव व प्रभुत्व सम्पन्न होता है, परन्तु प्रतिद्वन्द्विता मे वह वासुदेव से पराभूत होता है।

उक्त धारणा के अनुसार जैन साहित्य के कृष्ण शलाका-पुरुष वासुदेव हैं। वे इस रूप मे अर्द्ध भरतक्षेत्र के स्वामी, अर्द्ध-चक्रवर्ती अथवा त्रिखण्डाधिपति हैं। उन्हे द्वारिका सहित सम्पूर्ण दक्षिण भरतक्षेत्र का अधिपति कहा गया है। प्राकृत ग्रन्थ 'निरयावलिका' का तत्सम्बधी एक सूत्र यहाँ उद्धृत है—

"तत्थण बारवईए नयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया होत्था जाव पसासे माणे विहरई। अण्णेसि च बहूण राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईण वेयड्ढगिरि सागर-मेरागस्स दाहिणड्ढ भरहस्स आहे वच्चं जाव विहरइ।"

अर्थात् द्वारवती नगरी मे कृष्ण नाम के वासुदेव राजा थे। वे उस नगरी का यावत् शासन करते हुए विचरते थे। अनेक अधीनस्थ राजाओ, ऐश्वर्यवान

नागरिकों सहित वैताढ्यगिरि से सागरपर्यन्त दक्षिण भरतक्षेत्र उनके प्रभाव मे था।

वासुदेव और प्रतिवासुदेव

इस विवरण के आधार पर हमे यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण एक महान् शक्तिशाली व वीर राजपुरुष थे। उनकी 'वासुदेव' सज्ञा जैन धारणानुसार उनके श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप की द्योतक थी। जितने शक्तिशाली व प्रभाव सम्पन्न राजा कृष्ण थे, लगभग वही स्थिति जरासन्ध की भी थी। इसलिए जैन मान्यता मे जरासन्ध को प्रतिवासुदेव कहा गया है। जैन पौराणिक कृतियो मे वर्णन है कि कृष्ण और जरासन्ध में सघर्ष होता है। इस सघर्ष मे कृष्ण जरासन्ध का सहार करते हैं और इसके फलस्वरूप 'वासुदेव राजा' के रूप मे उनका अभिनन्दन किया जाता है। आचार्य जिनसेन अपने 'हरिवंशपुराण' (सर्ग ५३ श्लोक १७-१८) मे इस तथ्य का वर्णन करते हुए लिखते है—

अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टमम्बरे।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दन ॥
निहतश्च जरासन्धस्तच्चक्रेणैव संयुगे।
प्रतिशत्रुर्गुणद्वेषी वासुदेवेन चक्रिणा ॥

वैष्णव पुराणो का पौण्ड्रक-प्रसग

जैन-साहित्य की उक्त अवधारणा के सन्दर्भ मे तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध मे आये कृष्ण-पौण्ड्रक सघर्ष के प्रसग को उद्धृत करना चाहते हैं।[४] प्रसग सक्षेप मे इस प्रकार है—

एक समय बलराम जी द्वारिका से ब्रज आये। इसी समय करुष देश के राजा पौण्ड्रक ने कृष्ण के पास अपना दूत भेजा। दूत ने द्वारिका आकर भरी सभा मे अपने राजा का यह सन्देश कहा—"हे कृष्ण! तुमने झूठ ही अपना नाम वासुदेव रख लिया है। अब तुम उसे छोड दो, क्योकि वासुदेव मैं हूँ। या तो तुम इस तथ्य को स्वीकार कर मेरी शरण मे आ जाओ या मुझसे युद्ध करो।"

पौण्ड्रक की डीगभरी बाते सुनकर सभी सभासद हँसने लगे। कृष्ण ने दूत से कहा, "तुम अपने राजा को सूचित कर देना कि मैं उससे तथा उसे बह-काने वाले उसके साथियो से शीघ्र ही रणभूमि मे मिलूँगा।"

कृष्ण ने जिस समय यह सदेश भेजा, उस समय पौण्ड्रक काशी मे था। कृष्ण ने बिना अवसर खोये तुरन्त काशी पर आक्रमण कर दिया। महारथी पौण्ड्रक भी युद्ध के लिए तत्पर था। उसके साथ उसके अन्य मित्र राजा भी युद्ध-भूमि में सेना

सहित आये। पौण्ड्रक के हाथो में कृष्ण के समान ही शख, चक्र, गदा तथा धनुष आदि सुशोभित हो रहे थे। उसकी ध्वजा पर भी कृष्ण की तरह गरुड का चिह्न था।

दोनो मे भयानक युद्ध हुआ। युद्ध मे कृष्ण ने पौण्ड्रक को मार डाला। और इस प्रकार कृष्ण ही वासुदेव के रूप मे मान्य हुए।

वासुदेव विरुद स्वरूप

जैन-साहित्य में उपलब्ध कृष्ण-कथा मे कृष्ण-जरासन्ध सघर्ष की स्थिति भी ठीक कृष्ण-पौण्ड्रक के उक्त प्रसग जैसी ही है। जब जरासन्ध को कृष्ण व यादवों की शक्ति तथा प्रभाव की जानकारी मिली तो उसने दूत भेजकर यह सदेश कहा, "या तो मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध-भूमि मे सामना करने को तैयार हो जाओ।" इस सदेश के उत्तर मे कृष्ण यादवगण की सेना लेकर जरासन्ध से सघर्ष करने के लिए चल पडे। युद्ध-भूमि मे दोनो महान् राजाओ मे जो सघर्ष हुआ। उसमे कृष्ण ने जरासन्ध का वध किया तथा वे विजयी हुए। विजयी होने पर 'वासुदेव' रूप मे देवताओ ने उनका अभिनन्दन किया।

भागवत के कृष्ण-पौण्ड्रक प्रसग तथा जैन पौराणिक कृतियो के कृष्ण-जरासध सघर्ष के प्रसग मे अद्भुत साम्य है। दोनो ही प्रसगो मे दो समान शक्तिशाली राजाओ का सघर्ष एक-दूसरे पर प्रभुत्व पाने के लिए है। इस प्रभुत्व की इच्छा के साथ 'वासुदेवत्व' की सज्ञा अद्भुत रूप से जुडी हुई है। पौण्ड्रक कहता है कि वासुदेव वह है जबकि कृष्ण उसको मारकर वासुदेव रूप मे मान्य रहते है। जैन कथा-नायक कृष्ण जब युद्धभूमि मे जरासन्ध का वध कर देते हैं तभी वे वासुदेव रूप मे मान्य होते हैं।

श्रीमद्भागवत और जिनसेन कृत हरिवश-पुराण के उक्त प्रसग एक नयी विचारदृष्टि हमे देते है। क्या 'वासुदेव' तत्कालीन भारत मे कोई विरुद नाम था ? जिस प्रकार ज्ञात इतिहास मे चक्रवर्ती, विक्रमादित्य आदि विरुद नाम रहे हैं, क्या 'वासुदेव' भी इनकी तरह राजा की श्रेष्ठता और प्रभुता का प्रतीक था ? इस प्रश्न का उत्तर वासुदेवत्व के लिए हुए कृष्ण-पौण्ड्रक सघर्ष अथवा जैन-कथा के कृष्ण-जरासन्ध सघर्ष मे निहित है।

महाभारत मे कृष्ण का वासुदेव स्वरूप

वस्तुत कृष्ण का 'वासुदेवत्व' उनके वीरत्व का द्योतक है। उक्त प्रसगो से यही निष्कर्ष ध्वनित होता है। कृष्ण की अप्रतिम वीरता व शक्तिसम्पन्नता को जैन-परम्परा ने शलाकापुरुष वासुदेव के रूप मे मान्यता देकर ग्रहण किया जबकि

वैष्णव परम्परा ने अपनी अवतारवाद की भावना के अनुकूल उन्हें भगवान् विष्णु के अवतार, स्वयं भगवान् वासुदेव के रूप में माना तथा स्वीकार किया। वासुदेव रूप मे कृष्ण का मुख्य कार्य पृथ्वी पर उत्पन्न असुरों का संहार करना है। महाभारतकार ने (भीष्मपर्व ६६ ८ मे) लिखा है—

मानुषं लोकमविष्ठ वासुदेव इति श्रुत ।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्य महीतले ।

दुष्ट और अन्यायी राजाओं के संहार में कृष्ण ने जिस अप्रतिम वीरता और साहस का प्रदर्शन किया, उसका यशोगान दोनो ही परम्पराओं के साहित्य मे प्रमुखता से हुआ है। महाभारत में कृष्ण के वीर स्वरूप का वर्णन ही प्रमुख है। उनके बल, पराक्रम और शक्ति-सामर्थ्य का वर्णन करते हुए विदुर जी दुर्योधन से कहते हैं '

"सोमद्वार मे द्विविद नाम से प्रसिद्ध वानरराज रहता था। उसने एक दिन पत्थरो की भारी वर्षा करके कृष्ण को आच्छादित कर दिया। अनेक पराक्रमपूर्ण उपायो से उसने कृष्ण को पकडना चाहा, परन्तु नही पकड सका। प्राग्ज्योतिषपुर मे नरकासुर ने कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा की परन्तु वह भी सफल न हो सका। कृष्ण ने उस नरकासुर को मारकर उसके यहाँ बन्दी सहस्रों राजकन्याओ का उद्धार किया। निर्मोचन में छह हजार बडे-बडे असुरों को इन्होंने पाशों मे बाँध लिया। वे असुर भी जिन्हें बन्दी नही बना सके उन कृष्ण को तुम बलपूर्वक वश मे करना चाहते हो?

"इन्होने बाल्यावस्था मे पूतना का वध किया था और गायों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को धारण किया था। अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज और कंस भी कृष्ण के हाथ से मारे गये थे। जरासन्ध, दन्तवक्र, शिशुपाल और वाणासुर भी इन्ही के हाथ से मारे गये हैं तथा अन्य बहुत से राजाओ का भी इन्होंने संहार किया है। अमित तेजस्वी कृष्ण ने वरुण पर विजय पायी है तथा अग्निदेव को भी पराजित किया है। पारिजात-हरण करते समय इन्होंने साक्षात् शचीपति इन्द्र को भी जीता है। इन्होंने एकार्णव के जल मे सोते समय मधु और कैटभ नामक दैत्यो को मारा था और दूसरा शरीर धारण कर हयग्रीव नामक राक्षस का भी इन्होने वध किया था। ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नही है। सबके पुरुषार्थ के कारण भी ये ही हैं। ये जो भी चाहें अनायास ही कर सकते हैं। अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले इन गोविन्द का पराक्रम भयंकर है। तुम इन्हे अच्छी तरह नहीं जानते। ये क्रोध मे भरे हुए विषधर के समान भयानक हैं। ये सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित एवं तेज की राशि हैं। सहज ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु कृष्ण का तिरस्कार करने पर

तुम अपने मन्त्रियो सहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतगा अग्नि मे पडकर भस्म हो जाता है ।"

इस समस्त वर्णन मे कृष्ण की अपराजेय वीरता, उनके महान् पराक्रम तथा विशिष्ट तेजस्विता का निरूपण हुआ है ।

जैन परम्परा मे वासुदेव की विशिष्टता

जैनागम ग्रन्थ 'समवायाग सूत्र मे' शलाकापुरुष वासुदेव का वैशिष्ट्य इन शब्दों मे वर्णित है [१]

ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, चमकीले शरीरवाले, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, स्वरूपवान्, सुन्दर स्वभाववाले, सर्वप्रिय, स्वाभाविक बली, आहत न होनेवाले, अपराजित, शत्रु का मर्दन करनेवाले, दयालु, अमत्सर, अक्रोध, अचपल, परिमित तथा प्रिय सभाषण करनेवाले, गभीर, मधुर व सत्य भाषण करनेवाले, शरणागत वत्सल, लक्षण, व्यजन व गुणो से युक्त, मान-उपमान प्रमाण से पूर्ण, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, महान् धनुर्धारी, विशिष्ट बलधारक, दुर्धर धनुर्धारी, धीर पुरुष, युद्ध मे कीर्ति पानेवाले, उच्च कुलोत्पन्न, भयकर युद्ध को भी विघटित कर सकनेवाले, आधे भरतक्षेत्र के स्वामी, सौम्य राजवश के तिलक, अजित तथा अजित रथी, दीप्त तेज वाले, प्रवीर पुरुष, नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र, नरवृषभ, देवराज इन्द्र के समान राज्यलक्ष्मी के तेज से दीप्त आदि-आदि ।

उक्त गुण-वर्णन मे भी मूलत कृष्ण की वीरता, तेजस्विता, शक्ति-सम्पन्नता तथा उनके श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप का ही उल्लेख है ।

इस समस्त विवरण के आधार पर हम कहना चाहते है कि जैन मान्यता अनुसार कृष्ण शलाकापुरुष वासुदेव हैं और इस रूप मे वे वीर श्रेष्ठ राजपुरुष तथा आधे भरतक्षेत्र के शक्तिशाली अधिपति मान्य है । समस्त जैन साहित्य मे उनका व्यक्तित्व वर्णन इस मान्यता के अनुकूल है । जैन-परम्परा मे उनकी इस मान्यता के मूल मे जो तथ्य हैं, उनकी झलक महाभारत व श्रीमद्भागवत के प्रसगो मे भी द्रष्टव्य है ।

कृष्ण वासुदेव और तीर्थंकर अरिष्टनेमि

जैन परम्परागत साहित्य मे कृष्ण वासुदेव के सम्बन्ध मे एक और विशिष्ट तथ्य का वर्णन है । वह यह कि कृष्ण बाइसवें जैन तीर्थंकर अर्हत् अरिष्टनेमि के न केवल समकालीन थे, अपितु उनके चचेरे भाई भी थे । आगमिक कृतियो मे ऐसे अनेक प्रसगो का वर्णन है जब अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारिका जाते तथा कृष्ण सदल बल उनके उपदेश श्रवण को जाते ।[२]

अरिष्टनेमि और कृष्ण वासुदेव का जो पारिवारिक वंश-वृक्ष जैन परम्परा मे उपलब्ध है, वह इस प्रकार है—

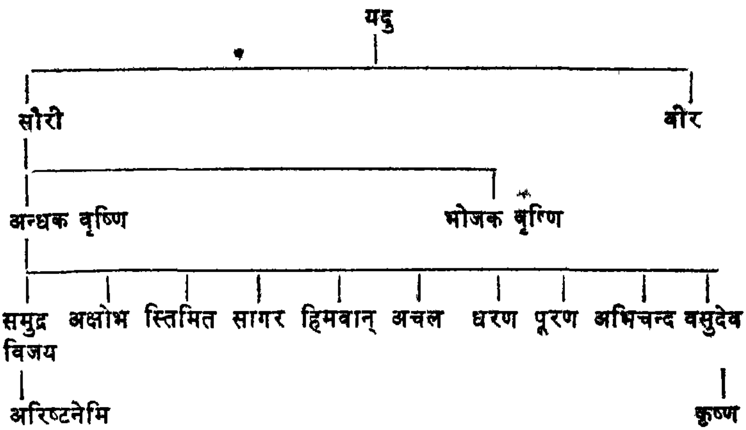

उक्त वशानुक्रम के अनुसार यदुवशी राजा अन्धक के दस पुत्र थे। जिनमे सबसे बडे समुद्रविजय के पुत्र अरिष्टनेमि थे तथा सबसे छोटे वसुदेव के पुत्र कृष्ण थे।

जैन-कृतियो मे उपलब्ध वर्णन के अनुसार कृष्ण आयु मे अरिष्टनेमि से बडे थे। कृष्ण ने ही भोजवश की कुमारी राजीमती से अरिष्टनेमि का विवाह सम्बन्ध निश्चित कराया। इस मगल महोत्सव के अवसर पर घटित एक घटना ने अरिष्ट-नेमि की जीवनचर्या ही बदल दी। जब अरिष्टनेमि वस्त्राभूषणो से अलकृत वैवाहिक अनुष्ठान के लिए अपनी बारात के साथ जा रहे थे तो एक बाडे मे उन्होंने बारात भोज के लिए एकत्रित अनेक पशु-पक्षियो को देखा। उनकी हिंसा की कल्पना मात्र ने उनके हृदय मे स्थित वैराग्य भाव को उभार दिया। उन्हे विरक्ति हो गयी। वैवाहिक वस्त्राभूषणो का त्याग कर वे वहाँ से लौट चले। सभी लोगो ने समझाने का अथक प्रयत्न किया, किन्तु उनका जन्मना विरक्त मन सासारिक माया-मोह की ओर आकृष्ट नही किया जा सका। वे विरक्त हो गृह त्याग कर चल दिये। गिरिनार की पहाडियो मे जाकर उन्होंने साधना की और कैवल्य प्राप्त किया। अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने लोक मे यात्राएँ की और जन-जन को उपदेश दिये। इस प्रक्रिया में यह बहुत स्वाभाविक है कि उनके कुल के लोग तथा द्वारिका के प्रजाजन उनके धर्म की ओर आकृष्ट हुए। स्वय द्वारिकाधीश कृष्ण का अपने कुल के इस विलक्षण त्यागी राज-कुमार के धर्म की ओर आकृष्ट होना अत्यन्त स्वाभाविक था।

इस प्रकार कृष्ण का तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्म सभाओ में उपस्थित होना, उनसे धार्मिक चर्चा करना तथा शका-समाधान करना बहुत सहज रूप से जैन परम्परागत साहित्य मे वर्णित है। कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के इस पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे महाभारत तथा समस्त वैष्णव परम्परागत साहित्य पूर्णत मौन है। यह एक अद्भुत स्थिति है कि एक तरफ तो जैन-परम्परागत साहित्य की सुदीर्घ कालावधि मे कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के इन सम्बन्धो का वर्णन करनेवाली अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं, वही समकालीन वैष्णव परम्परागत साहित्य मे इस सम्बन्ध मे किसी भी कृति मे कोई उल्लेख तक नही है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे घोर आगिरस का उपदेश

उपनिषदो मे पर्याप्त प्राचीन मानी जानेवाली कृति छान्दोग्य मे देवकी-पुत्र कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु घोर आगिरस का उल्लेख है। इस उपनिषद् के अध्याय तीन, खण्ड १७ मे आत्म-यज्ञोपासना का वर्णन है। इस यज्ञ की दक्षिणा के रूप मे तप, दान, आर्जव (सरलता), अहिंसा और सत्य वचन का उल्लेख है।[८] यह यज्ञ-दर्शन ऋषि घोर आगिरस ने देवकीपुत्र कृष्ण को सुनाया। इस उपदेश को सुनकर कृष्ण की अन्य विद्याओ के प्रति तृष्णा नहीं रही अर्थात् उनकी जिज्ञासा शान्त हो गयी और उन्हें कुछ जानना शेष नही रहा। घोर आगिरस ने कृष्ण को यह भी उपदेश दिया कि अन्तकाल मे उसे तीन मन्त्रो का जप करना चाहिए—(१) तू अक्षित (अक्षय) है, (२) तू अच्युत (अविनाशी) है तथा (३) तू अति सूक्ष्म प्राण है।[९]

छान्दोग्य के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि आगिरस ने कृष्ण को आत्मवादी विचारधारा का उपदेश दिया। इस आत्मयज्ञ के उपकरण के रूप मे तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यवचन का उल्लेख है। स्पष्ट ही यह विचारधारा वैदिक यज्ञोपासना से भिन्न प्रकार की थी। वैदिक परम्परागत यज्ञोपासना के बारे मे यह मान्य तथ्य है कि वह हिंसा व कर्मकाण्ड प्रधान थी। आत्मयज्ञ की इस धारणा मे तप, त्याग, हृदय की सरलता, सत्यवचन व अहिंसा आदि श्रेष्ठ गुणो के अगीकार द्वारा आत्मशुद्धि मुख्य बात थी। इस प्रकार आगिरस द्वारा उपदेशित आत्म यज्ञोपासना अहिंसाप्रधान थी तथा तप-त्याग आदि को उसमे महत्त्व दिया गया था।

जैन धर्म व दर्शन की समस्त परम्परा भी इन्ही विचारो पर आधारित है। आत्मा की श्रेष्ठता यहाँ मान्य है। अहिंसा को यह परम्परा परम धर्म मानती है। तप, त्याग, ऋजुता और सत्य का आचरण इस धर्म के लक्षण हैं। इस प्रकार घोर आगिरस द्वारा देवकीपुत्र कृष्ण को दिया गया उपदेश जहाँ जैन-परम्परा व विचारधारा के निकट है, वही वैदिक परम्परा तथा विचारधारा के विपरीत है।

डॉ० राधाकृष्णन ने लिखा है : "कृष्ण वैदिक धर्म के याजकवाद का विरोधी थे और उन सिद्धान्तों का प्रचार करते थे जो उन्होंने घोर आंगिरस से सीखे थे।"

अरिष्टनेमि और आंगिरस

घोर ऋषि की शिक्षाओं का जैन-परम्परा से साम्य विचारणीय है। पुनः जैन परम्परागत साहित्य में वर्णित कृष्ण तथा तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्म-चर्चाओं मे कृष्ण का उपस्थित होना इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लगता है। यह बहुत स्वाभाविक है कि कृष्ण अपने जीवन के उत्तरार्द्ध से अपने ही कुल के तपस्वी महापुरुष अरिष्टनेमि के अहिंसा तथा आत्मा की श्रेष्ठता व अमरता के विचारों से प्रभावित हुए थे। इस आधार पर ऐसी सभावना बनती है कि छान्दोग्य मे वर्णित कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु घोर आंगरिस तथा जैन परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अर्हत् अरिष्टनेमि अभिन्न व्यक्तित्व हैं।

निष्कर्ष

जैन साहित्य मे कृष्ण के सन्दर्भ मे दो महत्त्वपूर्ण आधारभूत तथ्य हैं। प्रथम, कृष्ण द्वारिका सहित आधे भरत क्षेत्र पर प्रभाव व प्रभुत्व रखनेवाले शक्तिशाली वासुदेव राजा थे। वे वीरता और अद्भुत पराक्रम के अतिशय से सम्पन्न विशिष्ट शलाकापुरुष थे। द्वितीय, वे बाइसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के न केवल समकालीन थे अपितु उनके चचेरे भाई भी थे। वे उनके आध्यात्मिक विचारो से प्रभावित होनेवाले प्रमुख राजपुरुष थे।

कृष्णचरित सम्बन्धी कृतियाँ

जैन साहित्य की परम्परा

जैन-साहित्य परम्परागत रूप मे तीर्थंकर महावीर (ई०पू० सन् ५६६-५२७) की देशना से सम्बद्ध है। मान्यतानुसार महावीर के प्रमुख शिष्य (गणधर) गौतम इन्द्रभूति ने जिनवाणी को बारह अग ग्रन्थो तथा चौदह पूर्वों के रूप मे सकलित व व्यवस्थित किया था। अग ग्रन्थो तथा पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं—

अग ग्रन्थ—आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरौपपातिक दशा, विपाकसूत्र, प्रश्नव्याकरण और दृष्टिवाद।

चौदहपूर्व ग्रन्थ—उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, अवंध्य, प्राणायु, क्रियाविशाल, लोकबिन्दुसार।

जो साधु इस समस्त वाणी का अवधारण कर सका, वह 'श्रुतकेवली' कहलाया। 'श्रुतकेवली' शब्द से यह ध्वनित है कि जिनवाणी प्रारम्भ मे श्रुतरूप मे ही सुरक्षित रही। जिस प्रकार वेद-वेदाग बहुत समय तक श्रुतरूप मे रहे, लगभग वही स्थिति प्रारम्भ मे जैन साहित्य की भी रही। श्रुतकेवली पाँच हुए जिनमे अन्तिम भद्रबाहु थे।[1]

भद्रबाहु के समय (ई० पू० ३२५) मगध मे बारह वर्ष का भयकर दुर्भिक्ष पडा। इस समय भद्रबाहु अपने साधु सघ के साथ मगध से चले गये थे। दुर्भिक्ष की इस लम्बी अवधि मे सूत्र के लुप्त होते जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। अत दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु स्वामी की अनुपस्थिति मे, पाटलीपुत्र नगर मे मुनि स्थूलभद्र की अध्यक्षता मे श्रमण सघ आयोजित किया गया और इसमे लुप्त होते जा रहे सूत्रों को व्यवस्थित व सकलित करने का प्रयास किया गया।[2] इस प्रयास मे प्रथम ग्यारह अग ग्रन्थ ही सकलित किये जा सके। बारहवें अंग ग्रन्थ दृष्टिवाद तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान निःशेष हो गया। जो अग ग्रन्थ सकलित किये जा सके, उनकी प्रामाणिकता को लेकर भी मतभेद हो गया। भद्रबाहु स्वामी के साथ मगध से जो साधु-सघ चला गया उसने इसे प्रामाणिक स्वीकार नही किया। इस प्रकार सूत्र की प्रामाणिकता को लेकर महावीर का अनुयायी साधु-सघ दो

वर्गों में विभाजित हो गया। एक वर्ग (श्वेताम्बर सम्प्रदाय) उपलब्ध ग्यारह अग ग्रन्थों को प्रामाणिक स्वीकार करता है जबकि दूसरा वर्ग (दिगम्बर सम्प्रदाय) समस्त आगम-साहित्य को विच्छिन्न मानता है।

(1) आगम साहित्य

ऊपर लिखा जा चुका है कि जैनियो का दिगम्बर सम्प्रदाय मूल आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता है। यह सम्प्रदाय आगमो के आधार पर रचित विभिन्न आचार्यों के कतिपय ग्रन्थो को ही आगम साहित्य के रूप मे मान्यता देता है।[1] ये ग्रन्थ हैं—

(क) षट्खण्डागम—इसकी रचना वीर-निर्वाण की सातवी शताब्दी (ई० पू० दूसरी शताब्दी) मे आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य भूतबलि और पुष्पदन्त ने प्राकृत भाषा मे की।

(ख) कषाय पाहुड—इसकी रचना आचार्य गुणधर ने इसी समय के लग-भग की।

(ग) महाबन्ध—यह षट्खण्डागम का ही अन्तिम खण्ड है जिसकी रचना आचार्य भूतबलि ने की।

(घ) धवला तथा जयधवला—प्रथम दो ग्रन्थ 'क' तथा 'ख' पर टीकाएँ है। इनके टीकाकार वीरसेनाचार्य हैं।

(ङ) ईसा की प्रथम शती मे कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मूल आगमो के आशय को ध्यान मे रख कर कई ग्रन्थो की रचना की। इनमे प्रवचनसार, समयसार, पचास्तिकाय तथा विभिन्न पाहुड-ग्रन्थ हैं। इनके आचार-पाहुड, सुत्तपाहुड, स्थानपाहुड, समवायपाहुड आदि के नामकरण से क्रमश आचाराग, सूत्रकृतांग, स्थानाग, समवायाग आदि अग-ग्रन्थो का आभास होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य आगमिक साहित्य का वर्तमान में उपलब्ध सकलन आचार्य देवगणि की अध्यक्षता मे आयोजित श्रमण सघ (ई० सन् ४५३-४६६, स्थान बलभीनगर, काठियावाड, गुजरात) द्वारा किया गया था।[4] इस प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा प्रामाणिक स्वीकार किया जानेवाला आगमिक साहित्य महावीर निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद सकलित हुआ था।

मूल आगम-साहित्य तो ग्यारह अंगों के रूप में ही अवशिष्ट समझा जा सकता है, परन्तु मूल आगमो के आशय को ध्यान मे रखकर अनेक आचार्यों ने जो ग्रन्थ लिखे तथा टीकाएँ लिखी वे सब आगमिक साहित्य मे सम्मिलत की जाती हैं। इस तरह महावीर-निर्वाण के पश्चात् आगमिक साहित्यकी वृद्धि होती रही। बलभी में आयोजित श्रमण सघ के समय आगमिक साहित्य के ग्रन्थों की सख्या

चौरासी तक पहुँच गयी थी। नन्दीसूत्र में इनके नाम इस प्रकार हैं।[५]

अंग ग्रन्थ—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक-दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद (विलुप्त)।

उपांग—औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, निरयावलिका (कल्पिका), कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा।

मूलसूत्र—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार-सूत्र और आवश्यकसूत्र।

छेदसूत्र—बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुत-स्कन्ध, निशीथ, महानिशीथ, पंचकल्प।

प्रकीर्णक—चतुःशरण, आतुर प्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, संस्तारक, तंदुलवैचरिक, चन्द्रवैध्यक, देवेन्द्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, अजीवकल्प, गच्छाचार, मरणसमाधि, सिद्धप्राभृत, तीर्थोद्गार, आराधनापताका, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या, तिथि-प्रकीर्णक, पिंडनिर्युक्ति, सारावली, पर्यन्तसाधना, जीव-विभक्त, कवच, योनिप्राभृत, वृद्ध चतुःशरण, जम्बूपयन्ना।

चूलिका सूत्र—अंगचूलिका और बंगचूलिका।

निर्युक्तियाँ—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुत-स्कन्ध, कल्पसूत्र, पिण्ड, ओघ और संसक्त।

शेषसूत्र—कल्पसूत्र, यतिजीत कल्प, श्राद्धजीत कल्प, पाक्षिक सूत्र, खामणा-सूत्र, वंदित्तुसूत्र और ऋषिभाषित सूत्र।

वर्तमान स्थिति यह है कि श्वेताम्बर जैनों के विविध सम्प्रदायों में भी आगमिक-साहित्य की प्रामाणिकता को लेकर मतभेद हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक इनमें से पैंतालिस ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं जबकि श्वेताम्बर स्थानकवासी तथा तेरापन्थी मात्र बत्तीस ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं। इनकी प्रामाणिकता सम्बन्धी मान्यताएँ निम्नप्रकार हैं—

सम्प्रदाय	अंग	उपांग	मूल सूत्र	छेदसूत्र	आवश्यक	प्रकीर्णक	चूलिका सूत्र	योग
श्वे० मूर्तिपूजक	११	१२	४	६	—	१०	२	= ४५
श्वे० स्थानकवासी एवं तेरापंथी	११	१२	४	४	१			= ३२

(II) आगमेतर साहित्य

आगमेतर जैन-साहित्य ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से लिखा जाने लगा था। यह साहित्य अनुयोग नामक एक विशेष पद्धति के रूप में लिखना प्रारम्भ हुआ था जिसके प्रणेता आचार्य आर्यरक्षित माने जाते हैं। अनुयोग-पद्धति के चार रूप थे (१) चरण-करणानुयोग, (२) धर्मकथानुयोग, (३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

चरण-करणानुयोग में जीवन के विशुद्ध आचार, धर्मकथानुयोग में विशुद्ध आचार का पालन करनेवालों की जीवन-कथा, गणितानुयोग में विशुद्ध आचार का पालन करनेवालो के अनेक भूगोल-खगोल के स्थान तथा द्रव्यानुयोग मे विशुद्ध जीवन जीनेवालो की तात्त्विक चिन्तन का स्वरूप-वर्णन होता था।[१]

अनुयोग पद्धति का मूल स्वरूप बारहवें अगग्रन्थ 'दृष्टिवाद' मे उपलब्ध था। दृष्टिवाद पाँच भागो मे विभक्त था—(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग तथा (५) चूलिका। चतुर्थ भाग अनुयोग की विषयवस्तु भी मूलत दो उपविभागो मे विभक्त थी—

(अ) मूल प्रथमानुयोग—इसमे अरहन्तो के पूर्वभव, गर्भ, जन्म तथा ज्ञान और निर्वाण का तथा उनके शिष्य समुदाय का वर्णन था।

(ब) गण्डिकानुयोग—इसमे कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि शलाकापुरुषो के चरित का वर्णन था।[७]

'दृष्टिवाद' सम्पूर्ण ही विच्छिन्न हो गया था अत उसका विभाग अनुयोग भी विच्छिन्न माना गया। आचार्य आर्यरक्षित ने अनुयोग की विषय सामग्री का 'धर्मकथानुयोग' नाम से उद्धार किया। जब यह भी विच्छिन्न होने लगा तो आचार्य कालक ने ई०सन् की प्रथम शताब्दी मे जैन परम्परागत कथाओ के सग्रह रूप मे 'प्रथमनुयोग' नाम से इसका पुन उद्धार किया। आज प्रथमानुयोग भी उपललब्ध नही है। चरित साहित्य से सम्बन्धित जो प्राचीन ग्रन्थ हैं, यथा-विमलसूरि कृत 'पउमचरिय', जिनसेन कृत 'हरिवशपुराण', जिनसेनगुणभद्र कृत महापुराण, शीलाक रचित 'चउप्पन-महापुरिस-चरित' तथा आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित' आदि ग्रन्थो मे ग्रन्थकारो ने इन्हे प्रथमानुयोग विभाग की रचना कहा है।[८]

उक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मे उपलब्ध विशाल जैन-चरित साहित्य का आधार धर्मकथानुयोग की विषयवस्तु है। और धर्मकथानुयोग की विषयवस्तु भी मूलत बारहवें अंगग्रन्थ दृष्टिवाद के चतुर्थ विभाग अनुयोग पर आधारित थी। अत समस्त जैन साहित्य परम्परागत रूप मे तीर्थंकर महावीर की देशना से सम्बद्ध है।

आगम-साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की प्रवृत्तियाँ

आगम साहित्य प्राकृत भाषा मे निबद्ध है। यह साहित्य मूलत. सिद्धान्त निरूपण से सम्बन्धित है। सिद्धान्त निरूपण की एक शैली के रूप मे कथा-कहानियो तथा व्यक्ति-चरितो का उपयोग हुआ है। कृष्ण-चरित के विविध प्रसगो का सन्दर्भानुसार इसी दृष्टि से विभिन्न आगमिक कृतियों मे वर्णन है। इस वर्णन मे एक श्रेष्ठ पुरुष एव द्वारिका के महान् शक्ति-सम्पन्न, ऐश्वर्यवान् राजा के रूप मे कृष्ण का यशोगान हुआ है। शलाका (उत्तम) पुरुष वासुदेव के रूप मे उनकी विशेषताओ, उत्तम लक्षणो, उनके विशिष्ट व्यक्ति स्वरूप का चित्रण है। कृष्ण-कथा के अवान्तर प्रसगो एव कृष्ण के जीवन की घटनाओ का अलग-अलग सन्दर्भों मे वर्णन हुआ है। कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमिक कृतियो का एव उनमे कृष्णचरित वर्णन के स्वरूप का परिचय आगे दिया जा रहा है।

कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमिक कृतियाँ

समवायांगसूत्र—यह चतुर्थ अग ग्रन्थ है।[९] जीव, अजीव आदि पदार्थ समूह की गणना इसका प्रतिपाद्य है। इसमे एक अध्ययन तथा एक श्रुतस्कन्ध है। इसमे शलाकापुरुषो का नामोल्लेख तथा उनकी विशेषताओ का वर्णन है। सूत्र २०७ का प्रतिपाद्य बलदेव तथा वासुदेव का वर्णन है। वासुदेव के रूप मे कृष्ण की विशेषताओ, उनके व्यक्तित्व, चारित्रिक गुण, लक्षण, उनका वेश, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज आदि का विवरण इस सूत्र मे दिया गया है।

ज्ञातृधर्म-कथा—यह छठा अग ग्रन्थ है।[१०] इसमे दो श्रुतस्कन्ध है। पहले मे १९ अध्ययन हैं तथा दूसरे मे १० अध्ययन है। प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलहवें अध्ययन मे द्रौपदी-चरित वर्णित है। इस प्रसग मे कृष्ण वासुदेव का श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप मे वर्णन हुआ है, जो अपने समय के राजसमाज मे पूजनीय थे तथा अत्यधिक प्रभावशाली व महान् बलशाली थे। सूत्र २९ मे पाण्डवो द्वारा कृष्ण को स्वामी सम्बोधन किया गया है। अर्द्धचक्रवर्ती वासुदेव राजा के रूप मे कृष्ण का वर्णन इस सूत्र मे विस्तारपूर्वक निरूपित है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध के पाँचवें अध्ययन मे द्वारिका के थावच्चापुत्र की अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने के प्रसग का वर्णन है। इस प्रसग मे द्वारावती नगरी का वर्णन, वहाँ के श्रेष्ठ वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन, उनके परिवार, रानियो, पुत्रादिको, वीरो, सेनापतियो तथा अन्य प्रजाजन का नामोल्लेख तथा वर्णन हुआ है। अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन, कृष्ण का उनकी उपदेश-सभा मे जाना तथा थावच्चापुत्र की प्रव्रज्या का वर्णन है। सूत्र १६ मे उल्लेख है कि स्वय कृष्ण थावच्चापुत्र के साथ अर्हत् अरिष्टनेमि के पास गये।

अन्तकृद्दशा—यह आठवाँ अग ग्रन्थ है।[११] इसका प्रतिपाद्य उन महान् आत्माओं का चरित-वर्णन है जिन्होंने अपने संयम और तप द्वारा अन्तिम अवस्था मे समस्त कर्मों का क्षय कर उसी भव मे मोक्ष प्राप्त किया। इसमे आठ वर्ग है तथा नब्बे अध्ययन हैं। इसके वर्ग १, ३, ४, ५ मे कृष्ण वासुदेव तथा उनकी रानियो, पुत्रो आदि का वर्णन है। इसी क्रम में द्वारावती नगरी का वर्णन, द्वारावती के शक्तिशाली राजा के रूप मे कृष्ण का वर्णन, कृष्ण की रानियो, पुत्रो, प्रपौत्रो, पुत्र-वधुओ आदि का वर्णन, वहाँ की सेना, सेनापतियो, ऐश्वर्यवान् नागरिको, सुभट वीरो आदि का उल्लेख, कृष्ण के माता-पिता, कृष्ण की परदु ख-कातरता, अर्हत् अरिष्टनेमि के भविष्य-कथन के रूप मे द्वारावती नगरी का विनाश, कृष्ण का परलोक-गमन तथा भावि जन्म आदि का वर्णन है।

ग्रन्थ के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे द्वारिका के राजा अन्धकवृष्णि तथा रानी धारिणी के पुत्र गौतमकुमार का, तथा तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन मे कृष्ण के सहोदर कुमार गजसुकुमाल के चरित का वर्णन है।

प्रश्नव्याकरण—यह दशम अग ग्रन्थ है।[१२] इसकी विषयवस्तु का विभाजन दो द्वारो (आस्रव और सवर) मे हुआ है। प्रत्येक द्वार मे पाँच अध्ययन हैं। आस्रव से तात्पर्य है आत्मा रूप तालाब मे जल रूप कर्मों का आगमन। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह आदि पाँच आस्रव के द्वार हैं। ये अधर्म-द्वार हैं। इसके विपरीत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—पाँच धर्म-द्वार हैं। इनके द्वारा आत्मा रूप सरोवर मे कर्मरूप जल के आगमन को रोका जाता है। यही सवर है।

आस्रव-द्वार के चतुर्थ अध्ययन मे कृष्णचरित का वर्णन है। कृष्ण के महान् चारित्र का, उनके श्रेष्ठ अर्ध-चक्रवर्ती राजा के रूप का, उनकी रानियो, पुत्रो तथा अन्य परिजनो का वर्णन सूत्र ६ मे उपलब्ध है। सूत्र ७ मे कृष्ण को चाणूर-मल्ल, रिष्ट बैल तथा कालिय नामक महान् विषैले सर्प का हन्ता कहा गया है। यमलार्जुन को मारनेवाले, महाशकुनि एव पूतना के रिपु, कस का मर्दन करनेवाले तथा राजगृह के अधिपति, वीर राजा जरासन्ध को नष्ट करनेवाले के रूप मे कृष्ण का उल्लेख है। इस सूत्र मे उनके व्यक्तित्व के महान् गुणो का भी वर्णन है। सूत्र ८ मे उनके शस्त्रास्त्र, उनके लक्षणो आदि का वर्णन है।

निरयावलिका[१३]—इसमे पाँच वर्ग हैं। पाँच वर्गों मे पाँच उपाग अन्तर्निहित हैं। निरयावलिका अन्तकृद्दशाग का, कल्पावतसिका अनुत्तरोपपातिक का, पुष्पिता प्रश्न-व्याकरण का, पुष्पचूलिका विपाकसूत्र का, एव वृष्णिदशा दृष्टि-वादाग का उपाग है।

पांचवां वर्ग वृष्णिदशा वर्ग है। इसमें बारह अध्ययन है। पहला अध्ययन निषधकुमार का है। निषधकुमार कृष्ण के बडे भाई राजा बलदेव तथा रानी रेवती के पुत्र थे। उन्होंने भी अर्हत् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली थी। निषधकुमार की कथा के वर्णनक्रम में द्वारिकानगरी का वर्णन तथा वहाँ के राजा कृष्ण वासुदेव के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। अर्हत् अरिष्टनेमि के द्वारावती आगमन पर कृष्ण वासुदेव का प्रसन्न होना, अपने कौटुम्बिक जनों को बुलाना तथा सजधज कर सबको साथ ले अरिष्टनेमि के पास जाने का वर्णन है।

उत्तराध्ययन[१४]—इसकी गणना मूल सूत्रो मे होती है। इसमे कुल ३६ अध्ययन हैं। बाइसवें अध्ययन में नेमिनाथचरित का वर्णन है। इसकी गाथाएँ १,२,३, ६,८,१०,११, २५ और २७ मे कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख उपलब्ध हैं। इसमे कृष्ण के माता-पिता जन्मस्थान, उनका वासुदेव राजा होना, नेमिकुमार के लिए राजीमती की याचना करना, नेमिकुमार के विवाह-महोत्सव मे जाना तथा नेमिकुमार के प्रव्रजित होने पर उन्हें मनोरथ प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद देना तथा जितेन्द्रिय व महान् संयमी अरिष्टनेमि की वन्दना कर द्वारावती लौटने का उल्लेख है।

आगमेतर साहित्य मे कृष्णचरित्र-वर्णन की प्रवृत्तियाँ

आगमेतर साहित्य मे कृष्णचरित का वर्णन करनेवाली दो प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध हैं—प्रथम वे कृतियाँ हैं जो त्रेषठशलाका-पुरुषो का चरितवर्णन करने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं। ये पुराण तथा चरित सज्ञक कृतियाँ हैं यथा गुणभद्राचार्य कृत महापुराण तथा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित आदि विशालकाय काव्य-कृतियाँ हैं। इन्हीं मे हरिवशपुराण सज्ञक कृतियो को भी सम्मिलित किया जा सकता है। हरिवशपुराण शीर्षक कृतियो मे हरिवश मे उत्पन्न शलाकापुरुषो तथा अन्य श्रेष्ठपुरुषो का चरित वर्णन है, इन्ही मे श्रीकृष्ण का चरित भी आया है। दूसरी वे कृतियाँ हैं जो तीर्थंकर अरिष्टनेमि, कृष्ण के भाई मुनि गजसुकुमाल, कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार आदि की परम्परागत जैन कथावस्तु को आधार बना कर लिखी गयी हैं। इन कृतियो मे द्वारिका के महान् शक्तिशाली राजा के रूप मे श्रीकृष्ण का वर्णन है। ये अपेक्षाकृत छोटी काव्य कृतियाँ हैं। महासेन कृत 'प्रद्युम्नचरित', ब्रह्म नेमिदत्त का 'नेमिजिनचरित' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

जैन साहित्य मे कृष्णचरित का सम्पूर्ण वर्णन पौराणिक कृतियो मे या समस्त शलाकापुरुषो का चरित वर्णन करनेवाली कृतियो मे ही हुआ है। यह परम्परा प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि सभी भाषाओ के जैनसाहित्य मे एक-सी

रही है। जो रचनाएँ नेमिनाथ, प्रद्युम्न, गजसुकुमाल आदि के चरित वर्णन को आधार बनाकर की गयी हैं उनमे आधिकारिक कथावस्तु से सम्बन्धित महापुरुष का चरित वर्णित है। पौराणिक कृतियों मे, विशेषतः हरिवश-पुराण सज्ञक कृतियों में, इन सभी का चरित-वर्णन मूल कृष्णकथा के अवान्तर प्रसगो के रूप मे हुआ है। हमने कृष्णकथा से सम्बन्धित अध्याय मे अवान्तर प्रसगो के रूप मे इन महापुरुषो के जीवनचरित का उल्लेख किया है। स्वाभाविक ही इन महापुरुषो के जीवनचरित पर आधारित स्वतन्त्र रचनाओ मे कृष्णचरित का प्रासगिक वर्णन हुआ है। यह परम्परा समस्त जैन साहित्य मे एक-सी बनी रही है। अत. हमने ऐसी कृतियो को भी कृष्णचरित का वर्णन करनेवाली कृतियो के रूप मे इस अध्याय मे सम्मिलित किया है। वस्तुतः जैन-परम्परा के कृष्णचरित साहित्य मे या तो शलाकापुरुषो का वर्णन करनेवाली पौराणिक कृतियाँ है या फिर कृष्ण से सम्बन्धित उपर्युक्त महापुरुषो का चरित वर्णन करनेवाली कृतियाँ हैं।

पाण्डवो से सम्बन्धित रचनाएँ पाण्डवपुराण, पाण्डवचरित आदि संस्कृत तथा हिन्दी मे उपलब्ध हैं। इस प्रकार की रचनाओ मे महाभारत की कथा तथा जैन स्रोतो से उपलब्ध पाण्डवगण से सम्बन्धित प्रसगो को मिला दिया गया है। इनके रचनाकारो ने महाभारत के पाण्डवचरित का जैन रूपान्तरण कर लिया तथा पाण्डवगण से सम्बन्धित जैन प्रसगो को यथास्थान जोड लिया है। ऐसी रचनाओ मे भी कृष्णचरित का प्रासगिक वर्णन जैन परम्परानुसार द्वारिका के 'वासुदेव राजा' के रूप मे हुआ है।

सक्षेप मे जैन साहित्य मे कृष्णचरित के वर्णन की यही मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

आगे हम प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश व हिन्दी भाषा मे रचित कृष्णचरित सम्बन्धी उपलब्ध कृतियो का परिचय और उनमे कृष्णचरित वर्णन के स्वरूप का विवरण दे रहे है।

कृष्णचरित सम्बन्धी आगमेतर कृतियाँ

(1) प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश कृतियाँ

क्रम संख्या	नाम कृति	कृतिकार	रचनाकाल	प्रकाशक
(१)	वसुदेव हिण्डी (प्रा०)	सघदास गणि, धर्मदास-गणि	५वी शती ई	आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर।
(२)	हरिवश पुराण (स०)	आचार्य जिनसेन	७८३ ई	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
(३)	रिट्ठणेमि चरिउ (अप०)	स्वयभू	८वीं शती ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर छोटे दीवानजी, जयपुर।
(४)	उत्तरपुराण (महापुराण) (स०)	आचार्य गुणभद्र	८५३ ई.	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
(५)	तिसिट्ठ-महापुरिस-गुणालकारु (अप०)	पुष्पदन्त	९५९-९६५ ई	माणिक चन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई।
(६)	प्रद्युम्नचरित (स०)	महासेनाचार्य	१०वी शती ई	ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
(७)	प्रद्युम्नचरित (स०)	आचार्य सोमकीर्ति	१०वी शती ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।
(८)	त्रिषष्ठि-शलाकापुरुष-चरित (स०)	हेमचन्द्राचार्य	११वी शती ई	आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर।

(९)	हरिवंशपुराण (अप०)	धवल	११वी शती ई	अप्रकाशित, ई० १५२२ की प्रतिलिपि उपलब्ध। दि० जैन बडा मन्दिर तेरापन्थियो का जयपुर।
(१०)	णेमिणाह-चरिउ (अप०)	दामोदर	१२३० ई०	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(११)	कण्हचरिय (प्रा०)	देवेन्द्र सूरि	१३वी शती ई	ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर जैन संस्था, रतलाम।
(१२)	हरिवंशपुराण (अप०)	यश कीर्ति	१४४० ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(१३)	पाण्डव पुराण (अप०)	यश कीर्ति	१४४३ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन बडा मन्दिर तेरापन्थियो का, जयपुर।
(१४)	णेमिणाह चरिउ (अप०)	लखमदेव	१४५३ ई (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।
(१५)	हरिवंश पुराण (अप०)	श्रुतकीर्ति	१४९५ ई (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(१६)	पज्जुण्ण चरिउ (अप०)	कवि सिंह	१४९६ ई (प्रतिलिपि)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(१७)	णेमिणाह चरिउ (अप०)	रइधू	१६वी शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, जैन सिद्धान्त-भवन, आरा।
(१८)	पाण्डव पुराण (सं०)	शुभचन्द्र	१५५१ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

(१९)	हरिवंश पुराण (सं०)	ब्रह्म जिनदास	१६०४ ई. (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(२०)	हरिवंश पुराण (स०)	ब्रह्म नेमिदत्त	१६१७ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(२१)	प्रद्युम्न चरित (स०)	रत्नचन्द्रगणि	१८७७ ई (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२२)	पाण्डव पुराण (स०)	देवप्रभ सूरि	१९वी शती ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर।

(II) हिन्दी कृतियाँ

(१)	नेमिनाथ रास	सुमति गणि	१२३८ ई	हस्तलिखित प्रति उपलब्ध . जैसलमेर दुर्ग स्थित शास्त्र-भण्डार।
(२)	गयसुकुमाल रास	कवि देल्हण (देवेन्द्रसूरि)	१३वी शती ई	आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ (सम्पादक—डा० गणपति चन्द्र गुप्त) पृ० ५७-६०।
(३)	प्रद्युम्न चरित	कवि सधारू	१३५४ ई	प्रकाशित, महावीर जी अतिशय क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी समिति, जयपुर, सम्पादक—प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ एव डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
(४)	रगसागर नेमि फागु	सोमसुन्दर सूरि	१४२६ ई	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, मगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३६-१४८।

(५)	सुरंगाभिध नेमि फागु	धनदेव गणि	१४४५ ई	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन रचनाएँ, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० ११९-१२६ पर प्रकाशित।
(६)	हरिवंश पुराण	ब्रह्म जिनदास	१५६३ ई	हस्तलिखित प्रति उपलब्ध, खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर, उदयपुर।
(७)	नेमिनाथ फागु	जयशेखर सूरि	१५वी शती ई	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, पृ० ११०-११७ पर प्रकाशित।
(८)	बलिभद्र चौपाई	कवि यशोधर	१५२८ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(९)	नेमिनाथ रास	मुनि पुण्यरतन	१५२९ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(१०)	प्रद्युम्न रासो	ब्रह्म रायमल्ल	१५७१ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(११)	नेमीश्वर रास	ब्रह्म रायमल्ल	१५५८ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(१२)	नेमीश्वर की बेलि	कवि ठाकुरसी	१६वी शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर।
(१३)	बलभद्र बेलि	कवि सालिग	ई. सन् १६२१ कीप्रतिलिपि	अप्रकाशित प्रति उपलब्ध, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
(१४)	हरिवंश पुराण	शालिवाहन	१६३८ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन पल्लीवाल मन्दिर, धूलियागज आगरा एवं आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(१५)	नेमिश्वर चन्द्रायण	नरेन्द्रकीर्ति	१६३३ ई (प्रतिलिपि)	अप्रकाशित, प्रतिलिपि उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

(१६)	नेमिनाथ रास	कनककीर्ति	१६३५ ई	अप्रकाशित, प्रतिलिपि उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार, जयपुर।
(१७)	नेमिनाथ रास	मुनि केसरसागर	१६३५ ई प्रतिलिपि	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध : विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(१८)	प्रद्युम्न प्रबन्ध	देवेन्द्रकीर्ति	१६६५ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर संभवनाथ जी, उदयपुर।
(१९)	पाण्डव पुराण	बुलाकीदास	१६६९ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, शास्त्र भण्डार श्री महावीर जी क्षेत्र, जयपुर।
(२०)	नेमीश्वर रास	नेमिचन्द्र	१७१२ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(२१)	नेमिनाथ चरित्र	अजयराज पाटनी	१७३६ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२२)	हरिवंश पुराण	खुशालचन्द काला	१७२३ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(२३)	उत्तर पुराण	खुशालचन्द काला	१७३२ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पाड्या, जयपुर।
(२४)	नेमनाथ चरित्र	जयमल	१७५७ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(२५)	नेमनाथ रास	रतनमुनि	१७६७ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर।

(२६)	नेमनाथ रास	विजयदेव सूरि	१७६६ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२७)	नेमिचन्द्रिका	मनरगलाल पल्लीवाल	१८२३ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर बडा तेरापन्थियान, जयपुर।
(२८)	कृष्ण की ऋद्धि	बुधमल	१८४६ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(२९)	प्रद्युम्नचरित	मन्नालाल	१८४४ ई	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(३०)	भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम कृष्ण	मुनि चौथमल जी	१९४१ ई	प्रकाशन—सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सीहोर कैण्ट।

कृति परिचय

वसुदेव-हिण्डी

आगमेतर प्राकृत कथा-साहित्य मे उपलब्ध यह एक अत्यन्त प्राचीन कृति है। इस कृति का मुख्य वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी के भ्रमण (हिण्डी) का वृतान्त है। यह कृति दो खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड के रचयिता सघदास गणि तथा दूसरे के धर्मसेन गणि हैं। प्रथम खण्ड मे २९ लभक, ११,००० श्लोकप्रमाण तथा दूसरे खण्ड मे ७१ लभक १७,००० श्लोकप्रमाण हैं। सघदास गणि का समय ई० सन् की लगभग पाँचवी शताब्दी माना जाता है।[५]

प्रस्तुत कृति मे कथा का विभाजन छह अधिकारो मे किया गया है। ये अधिकार हैं—कहुप्पत्ति (कथा की उत्पत्ति), पीठिया (पीठिका), मुह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसहार (उपसहार)।

वसुदेव जी के चरित का वर्णन दूसरे खण्ड में है। इसके अनुसार, वसुदेवजी सौ वर्ष तक परिभ्रमण करते रहे और उन्होंने सौ कन्याओ से विवाह किया। वसुदेवजी के भ्रमण की मुख्य कथा के साथ-साथ इसमे अनेक अन्त कथाएँ हैं जिनमें तीर्थंकरो तथा अन्य शलाकापुरुषो के चरित वर्णित हैं।

पीठिका मे कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शबकुमार की कथा का वर्णन है। बलराम तथा कृष्ण की अग्रमहिषियो का परिचय, प्रद्युम्नकुमार का जन्म, अपहरण, प्रद्युम्न का अपने माता-पिता से मिलना तथा पाणिग्रहण आदि का वर्णन है। 'मुख ' अधिकार मे कृष्ण के पुत्र शब और भानुकुमार की क्रीडाओ का वर्णन है। इनके अतिरिक्त इस कृति मे हरिवश कुल की उत्पत्ति, कस के पूर्वभव आदि का भी वर्णन हुआ है।

जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण

जैन साहित्य मे कृष्णचरित वर्णन की दृष्टि से इस पौराणिक कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ६६ सर्गों मे पूर्ण एक विशालकाय पौराणिक काव्यकृति है। उपलब्ध जैन साहित्य मे यह ऐसी प्रथम कृति है जिसमे कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन-चरित व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप मे वर्णित है। कृष्णकथा के अवान्तर प्रसगो का भी इसमे विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। कृष्णचरित-वर्णन की दृष्टि से बाद के जैन साहित्यकारों के लिए यह उपजीव्य कृति रही है।

इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य जिनसेन थे। ये पुन्नाट प्रदेश (कर्नाटक का पुराना नाम) के मुनि संघ की आचार्य परम्परा मे हुए थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। जिनसेन के माता-पिता, जन्म-स्थान तथा प्रारम्भिक जीवन का कुछ भी उल्लेख उपलब्ध नही है।

इस का रचनाकाल विक्रम की नवमी शताब्दी का मध्यकाल है। यह ग्रन्थ शक संवत् ७०५ (ई० सन् ७८३) मे पूर्ण हुआ।[17] ग्रन्थकार के उल्लेखानुसार वर्धमानपुर में नन्नराज द्वारा निर्माण कराये गये श्री पार्श्वनाथ मन्दिर में इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की गयी थी। परन्तु वहाँ इसकी रचना पूर्ण नहीं हो सकी। पर्याप्त भाग शेष बच रहा, बाद मे 'दोस्तटिका' नगरी की प्रजा के द्वारा निर्मित, उत्कृष्ट अर्चना और पूजा-स्तुति से युक्त वहाँ के शान्तिनाथ मन्दिर मे इसकी रचना पूर्ण हुई।[17]

वर्धमानपुर की स्थिति के बारे मे मतभेद हैं। डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के मत से यह काठियावाड का वर्तमान बढ़वान है। डॉ० हीरालाल के मतानुसार, यह मध्यभारत के धार जिलो का बदनावर होना चाहिए।[18]

ग्रन्थ की विषयवस्तु ६६ सर्गों (आठ अधिकारो) मे विभक्त है। पुराण मे सर्वप्रथम लोक के आकार का वर्णन, फिर राजवंशो की उत्पत्ति, तदनन्तर हरिवंश का अवतार, फिर वसुदेव की चेष्टाओ का कथन, तदनन्तर नेमिनाथ का चरित, द्वारिका का निर्माण, युद्ध का वर्णन और निर्वाण—ये आठ शुभ अधिकार कहे गये हैं।[19]

कृष्णचरित का वर्णन ग्रन्थ के निम्न सर्गों मे इस प्रकार हुआ है—कृष्ण-जन्म, बालक्रीडा, कृष्ण के लोकोत्तर पराक्रम का वर्णन (सर्ग ३५)। कंस द्वारा कृष्ण को मारने के प्रयत्न, मथुरा मे मल्लयुद्ध, कृष्ण द्वारा कंस वध, सत्यभामा से विवाह, जरासन्ध के भाई अपराजित का वध (३६)। जरासन्ध के आक्रमण के कारण यादवो का मथुरा से प्रस्थान। द्वारिका का निर्माण तथा द्वारिका-प्रवेश (४१)। कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण व विवाह, शिशुपाल-वध (४२)। प्रद्युम्न का जन्म तथा हरण (४३)। कृष्ण का जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी पद्मावती और गान्धारी के साथ विवाह (४४)। प्रद्युम्न का द्वारिका लौटना (४७)। कृष्ण के पुत्रो का वर्णन (४८)। कृष्ण-जरासन्ध युद्ध तथा कृष्ण द्वारा जरासन्ध का वध (५०)। जरासन्ध-वध के फलस्वरूप नारायण (वासुदेव) रूप मे कृष्ण की प्रसिद्धि तथा अनेक राजाओ, विद्याधरो द्वारा कृष्ण का अभिनन्दन (५३)। द्रौपदीहरण, कृष्ण द्वारा राजा पद्मनाभ को दण्डित कर द्रौपदी को वापिस लाना। कृष्ण का पाण्डवो पर कुपित होना तथा उन्हे हस्तिनापुर से निर्वासित करना। पाण्डवो का दक्षिण समुद्र-तट पर जाकर मधुरा नगरी बसाकर रहना (५४) नेमिनाथ चरित वर्णन (५५)। गजसुकुमाल चरित वर्णन (६०)। द्वारिका-दहन (६१)। कृष्ण का परमधाम-गमन (६२)।

यह पुराण-ग्रन्थ महाकाव्य के गुणो से गुथा हुआ एक उच्चकोटि का काव्य है। इसमे सभी रसो का अच्छा परिपाक हुआ है। जरासन्ध और कृष्ण के बीच रोमाचकारी युद्ध-वर्णन मे वीररस की अभिव्यक्ति है। द्वारिका-निर्माण और

यदुवंशियों के प्रभाव-वर्णन मे अद्भुत रस का प्रकर्ष है। नेमिनाथ का वैराग्य और बलराम का विलाप करुण रस से भरा हुआ है। काव्य का अन्त शान्त रस में होता है। प्रकृतिचित्रण के भी अनेक सुन्दर स्थल हैं, यथा ऋतु-वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन आदि। ग्रन्थ की भाषा उदात्त तथा प्रौढ है एवं अलकार व विविध छन्दो से अलकृत है।

हिन्दी मे हरिवशपुराण शीर्षक कृतियाँ इससे प्रभावित रचनाएँ है। जैसे शालिवाहन कृत हरिवशपुराण, खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण आदि।

महापुराण (उत्तर-पुराण)

सस्कृत जैन साहित्य का यह अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके दो भाग हैं· आदिपुराण और उत्तरपुराण। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ छिहत्तर पर्वों (सर्गों) मे पूरा हुआ है। इसके प्रथम ४२ पर्व और ४३ पर्व के ३ पद्य आचार्य जिनसेन रचित हैं शेषभाग को इनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया था। इस शेष भाग मे उत्तर पुराण है जिसमे कि कृष्णचरित का वर्णन है। उत्तरपुराण प्रकाशित रचना है।[२०]

आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन हरिवशपुराण के रचयिता जिनसेनाचार्य से भिन्न व्यक्ति थे। ये पचस्तूपान्वय (अन्यनाम से नान्वय) सम्प्रदाय के आचार्य थे।[२१] इन्होंने अपना ग्रन्थ त्रेसठ शलाकापुरुषो का चरित्र वर्णन करने की दृष्टि से लिखना प्रारम्भ किया था, परन्तु बीच मे ही उनका देहावसान हो गया था। अत आदिपुराण के शेष पाँच पर्व तथा उत्तरपुराण (२१ पर्व) गुणभद्राचार्य रचित है।

प० नाथूराम प्रेमी ने आदिपुराण का प्रारम्भ वि० सवत् ८९५ (ई० सन् ८३८) मे अनुमानित किया है तथा उत्तरपुराण की समाप्ति वि०स ९१० (ई० सन् ८५३) मानी है।[२२] उत्तरपुराण के रचयिता गुणभद्र महान् विद्वान्, काव्यप्रतिभा के धनी तथा बडे ही गुरुभक्त व्यक्ति थे। उनके जन्म तथा मृत्यु की तिथियाँ, जन्म-स्थान, माता-पिता आदि के बारे मे ग्रन्थ मे कोई जानकारी प्राप्त नही होती है। उत्तरपुराण को उन्होने बकापुर नामक स्थान पर पूरा किया था। यह स्थान पूना बेंगलोर रेलवे लाइन के हरिहर स्टेशन से २३ कि मी. दूर धारवाड जिले मे बताया गया है।[२३]

आदिपुराण मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चरित का वर्णन है। शेष २३ तीर्थंकरों तथा अन्य शलाकापुरुषों का चरित वर्णन उत्तरापुराण मे हुआ है। स्वाभाविक ही ये वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त हैं। उत्तरपुराण के पर्व ७१-७३ मे कृष्णचरित का वर्णन है। हरिवशपुराण की अपेक्षा यह चरितवर्णन अत्यधिक संक्षिप्त है। इसमे परम्परागत कृष्णचरित के प्रमुख प्रसगो का ही प्रतिपादन हो सका है अन्यथा अधिकाश उल्लेख मात्र हैं।

हिन्दी में खुशालचन्द काला कृत उत्तरपुराण इस ग्रन्थ से प्रभावित रचना है।[३]

महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्नचरित

श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जीवनचरित पर आधारित यह संस्कृत खण्ड-काव्य है। इसके रचयिता लाट-वर्गट मुनि सघ अर्थात् गुजरात (लाट) तथा डूगरपुर-बाँसवाडा (राजस्थान के दो भूतपूर्व राज्य जो बागड प्रदेश के नाम से जाने जाते रहे हैं) के मुनिसघ के आचार्य महासेन हैं। इनकी यही एक मात्र कृति मिलती है। श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार इसकी रचना वि० सवत् १०३१ और १०६६ के मध्य हुई है।[४]

प्रद्युम्न का जैन चरित-नायको मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे कामदेव (अतिशय सुन्दर पुरुष) कहे गये हैं। उनका जन्म द्वारिका के राजा कृष्ण की रानी रुक्मिणी से हुआ था। जन्म की छठी रात्रि को ही धूम्रकेतु ने बालक प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया। बाद मे कालसवर नामक विद्याधर राजा के यहाँ उनका लालन-पालन हुआ। युवा होकर तथा अनेक विद्याओ मे पारगत होने के बाद नारद द्वारा वास्तविक स्थिति जानकर प्रद्युम्न अपने माता-पिता के पास लौटे। सभी बडे प्रसन्न हुए। द्वारिका मे उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने लम्बी अवधि राजसुख भोगकर वैराग्य की दीक्षा ली तथा निर्वाण प्राप्त किया। कृति मे प्रद्युम्न की यह परम्परागत कथा वर्णित है। प्रद्युम्नचरित के अनुकरण पर कालान्तर में हिन्दी मे भी खण्डकाव्य प्रस्तुत किये गये। यथा सधारु का प्रद्युम्नचरित, देवेन्द्रकीर्ति का प्रद्युम्न प्रबन्ध आदि।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित

त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित सस्कृत-प्राकृत के प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हेम-शब्दानुशासन' के कर्ता श्वेताम्बर जैनाचार्य हेमचन्द्र का सस्कृत भाषा मे निबद्ध त्रेषठशलाका-पुरुषो का चरित वर्णन करने वाला काव्य-ग्रन्थ है। हेमचन्द्र गुजरात के बडे प्रभावशाली जैनाचार्य थे जिनका सम्बन्ध सिद्धराज जयसिंह तथा कुमार पाल जैसे गुजरात के प्रसिद्ध राजाओ से था। इनका व्याकरण ग्रन्थ 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' जयसिंह सिद्धराज को समर्पित किया गया था। कहते हैं इस व्याकरण ग्रन्थ की हाथी पर सवारी निकाली गयी थी। स्वय हेमचन्द्राचार्य भी उसी हाथी पर विराजमान थे। इनका जन्म गुजरात के एक जैन परिवार मे वि० स० ११४५ मे हुआ था तथा मृत्यु वि०स० १२२६ में हुई।[५] चौलुक्य-राज कुमारपाल के ये गुरु थे। ये महान् विद्वान् तथा संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओ के ज्ञाता थे।

'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित' आचार्य की बाद की रचना है। डॉ० बूल्हर ने

इसका रचनाकाल सवत् १२१६-२८ माना है।[25] हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना राजा कुमारपाल के अनुरोध पर की थी। इस चरित्र-ग्रन्थ मे परम्परागत ६३ शलाकापुरुषो का चरित वर्णन है। इस दृष्टि से यह महापुराण की परम्परा की रचना है। इसमें जैनो की अनेक कथाएँ, इतिहास, पौराणिक मान्यताएँ, सिद्धान्त एव तत्त्वज्ञान का निरूपण है। ग्रन्थ मे १० पर्व हैं। प्रत्येक पर्व मे अनेक सर्ग हैं। कृष्णचरित का वर्णन आठवें पर्व में हुआ है। इसी पर्व मे नेमिनाथ, बलराम, जरासन्ध आदि के चरित वर्णित है। इसकी भाषा सरल व प्रसाद गुण सम्पन्न है। गुजरात का तत्कालीन समाज कृति में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित हुआ है।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे यह ग्रन्थ अधिक प्रचलित रहा है। इस सम्प्रदाय के साहित्यकारो ने अपनी हिन्दी कृतियो के कथानको के लिए आगमिक कृतियो के साथ ही इस ग्रन्थ का भी प्रमुख स्रोत-ग्रन्थ के रूप मे उपयोग किया है।

रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमि-चरित)

यह अपभ्र श भाषा की महत्त्वपूर्ण काव्य-कृति है। इसके रचयिता महाकवि स्वयभू थे।

उपलब्ध अपभ्र श साहित्य की दृष्टि से स्वयभू अपभ्र श साहित्य के प्रथम कवि हैं। श्री नाथूराम प्रेमी ने उनका समय वि० स० ७३४ से ८४० के मध्य अनुमानित किया है।[26] इनकी एक अन्य कृति 'पउम चरिउ' मे उपलब्ध उल्लेखानुसार इनके पिता का नाम मारुत तथा माता का पद्मिनी था। इनकी दो पत्नियाँ थी—अमृताम्बा तथा आदित्याम्बा। इनके अनेक पुत्रो मे त्रिभुवन का नाम प्रमुख है। ये दक्षिणात्य थे और सभवत कर्नाटक प्रदेश के निवासी थे। इन्होने अपने वश-गोत्र आदि का कोई उल्लेख अपनी रचनाओ मे नही किया।[18]

महाकवि स्वयभू के साहित्य की जो जानकारी अभी तक मिल पाई है वह इस प्रकार है—(१) पउमचरिउ (पद्मचरित), (२) रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमिचरित), (३) पचमिचरिउ (नागकुमारचरित), तथा (४) स्वयभू के छन्द। इनमे 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे कृष्ण-कथा का वर्णन है। यह ११२ सन्धियो (सर्गों) मे निबद्ध बृहत्काय महाकाव्य है। इनमे प्रथम ९२ सन्धियाँ (यादव काण्ड १३ सन्धियाँ, कुरुकाण्ड १९ तथा युद्धकाण्ड की ६० सन्धियाँ) महाकवि स्वयभू ने छह वर्ष, तीन मास तथा ग्यारह दिनो मे पूर्ण की थीं ऐसा उल्लेख ग्रन्थ की ९२ वी सन्धि की समाप्ति पर हुआ है।[29] शेष २० सधि मे से प्रथम सात सभवत स्वय स्वयभू ने तथा अवशिष्ट उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयभू ने पूर्ण की थी। इनमे से कतिपय सन्धियो (१०६, १०८, ११० व १११) में मुनि जसकीर्ति (यश कीर्ति) का भी नामोल्लेख है, अत अनुमान किया जा सकता है कि इनकी रचना मे उनका भी हाथ है। श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार, मुनि यश कीर्ति ग्रन्थकर्ता से लगभग ६-७

सौ वर्ष बाद के लेखक हैं तथा उनका स्वयं रचित हरिवंशपुराण भी उपलब्ध है।[९] लगता है उन्होंने स्वयंभू, त्रिभुवन स्वयभू के मूल ग्रन्थ से नष्ट हो गये अशो के स्थान पर अपनी रचना के अश काट-छाँट कर जड़ दिये हों।[१०]

रिट्ठणेमिचरिउ के यादवकाण्ड मे कृष्णचरित का वर्णन है। कृष्ण के साथ ही प्रद्युम्न तथा अरिष्टनेमि का चरितवर्णन भी इसी काण्ड मे हुआ है। कुरुकाण्ड मे कौरव-पाण्डवो का वर्णन तथा युद्धकाण्ड मे उनके युद्ध का वर्णन है।

स्वयभू अपभ्र श भाषा के महान् कवि तथा आचार्य थे। अपभ्र श के अन्य कवियो ने अत्यन्त आदर के साथ उनका नाम-स्मरण किया है। वे छन्द तथा व्याकरण शास्त्र के भी महान् विद्वान थे। छन्दचूडामणि तथा कविराज धवल उनके विरुद थे। उनके पुत्र त्रिभुवन भी अपने पिता के समान ही समर्थ कवि थे। कविराज चक्रवर्ती उनका विरुद था।

रिट्ठणेमिचरिउ अप्रकाशित रचना है। इसकी एक प्रति शास्त्र-भण्डार श्री दि० जैन मन्दिर, छोटा दीवानजी जयपुर मे उपलब्ध है।

तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालकार (त्रिषष्टि-महापुरुष-गुणालकार)

'तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालकार' महाकवि पुष्पदन्त रचित एक विशालकाय अपभ्र श काव्यकृति है जिसमे कवि ने जैन परम्परागत ६३ शलाकापुरुषो के चरितो का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। जैन पुस्तक भण्डारो मे इसकी अनेकानेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं और इस पर टिप्पण ग्रन्थ भी लिखे गये है, जिनमे कतिपय उपलब्ध भी हैं।[११] यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।[१२]

सपूर्ण ग्रन्थ १२२ सन्धियो (सर्गों) तथा २० हजार श्लोको मे निबद्ध है। इसकी रचना मे कवि को छह वर्ष लगे। इसका रचनाकाल प० नाथूरामजी प्रेमी के अनुसार शक स० ८८१-८८७ (ई० सन् ९५९-९६५) है।[१३]

महाकवि पुष्पदन्त महान् और समर्थ कवि थे। वे काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम केशवभट्ट तथा माता का नाम मुग्धादेवी था। उनके माता-पिता पहले शैव थे। कालान्तर मे किसी दि० जैन गुरु के उपदेशामृत से जैन हो गये थे।[१४]

कवि पुष्पदन्त मान्यखेट के राजा कृष्णराय तृतीय के मन्त्री भरत तथा उनके पुत्र नन्न के आश्रय मे रहे। मान्यखेट का आधुनिक नाम मलखेड है जो जिला हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) मे है।[१५] पुष्पदन्त बड़े ही स्वाभिमानी, परन्तु निर्लिप्त प्रकृति के स्पष्टवादी एव विनयशील पुरुष थे। महामात्य भरत को सम्बोधित करते हुए उन्होने लिखा है—"मैं धन को तिनके के समान गिनता हूँ। उसे मैं नही लेता। मैं तो केवल अकारण प्रेम का भूखा हूँ और इसी से तुम्हारे निलय मे हूँ।" मेरी

कविता जिनेन्द्र-चरणो की भक्ति से ही स्फुरायमान होती है, जीविका निर्वाह के कारण से नहीं"।[15] यह कृति आदिपुराण और उत्तरपुराण इन दो खण्डों मे विभाजित है। आदिपुराण मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का तथा उत्तरपुराण मे अन्य तेईस तीर्थंकरो व अन्य शलाकापुरुषो का चरित-वर्णन है। उत्तरपुराण मे पद्मपुराण (रामचरित) तथा हरिवशपुराण (कृष्णचरित) भी सम्मिलित हैं। हरिवशपुराण उत्तरपुराण की ८१ से ९२ तक की सन्धियो मे वर्णित है। इसमे परम्परागत कृष्णचरित का सक्षेप मे वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना शैली का आधार जिनसेन गुणभद्र कृत सस्कृत महापुराण है।

णेमिणाह-चरिउ (रिट्ठणेमि चरिउ अथवा हरिवशपुराण)[16]

यह महाकवि रइधू की अपभ्र श भाषा की रचना है। रइधू अपने समय के बडे प्रभावशाली कवि एव विद्वान् पण्डित थे। डॉ० राजाराम जैन ने अपने शोध प्रबन्ध 'रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन' मे रइधू लिखित अनेक पुस्तको का नामोल्लेख किया है। कवि रइधू का अपरनाम सिंहसेन भी था। इनके पिता का नाम साहू हरिसिंह तथा माता का नाम विजयश्री था। ये अपने माता-पिता के तीसरे पुत्र थे। इनकी जाति पद्मावती पुरवाल थी। ये गृहस्थ थे। इनकी पत्नी का नाम सावित्री तथा पुत्र का नाम उदयराज था। इनका समय १५-१६वी शताब्दी वि० का है। इनके निवासस्थान के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता, परन्तु इनका अधिकतर जीवन ग्वालियर तथा इसके आस-पास के क्षेत्र मे रहते हुए व्यतीत हुआ। इनका सम्बन्ध काष्ठा सघ माथुर गच्छ की पुष्करणीय शाखा (दि० जैन आचार्यों का एक सघ) से था। ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा अनेक जिन-मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गयी थी।

रइधू लिखित 'णेमिणाहचरिउ' की एक हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा मे उपलब्ध है। यह प्रतिलिपि वि० स० १९८७ की है। यह परम्परागत पौराणिक शैली का जैन काव्य है। इसका आधार मुख्यत जिनसेन कृत हरिवशपुराण (सस्कृत) है। इसमे हरिवशपुराण की परम्परागत कथावस्तु को कवि ने मात्र १४ सन्धियो एव ३०२ कडवको मे वर्णित कर दिया है। हरिवश का प्रारम्भ, यादवो की उत्पत्ति, वसुदेवचरित, कृष्णचरित, नेमिनाथचरित, प्रद्युम्नचरित, पाण्डवचरित आदि का कृति मे वर्णन हुआ है।

काव्यत्व की दृष्टि से यह सुन्दर तथा सरस कृति है। इसमे शृगार, वीर, रौद्र, शान्त आदि रसो का सुन्दर परिपाक हुआ है। उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, भ्रान्तिमान, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, व्यतिरेक, सन्देह आदि शब्दालकारो के अनेक उदाहरण कृति मे उपलब्ध हैं। कवि की भाषा परिनिष्ठित अपभ्र श है।

गयसुकुमाल रास

गयसुकुमाल रास आदिकालिक हिन्दी की रचना है। इसका रचनाकाल ई० सन् १२५८-६८ (वि० सं० १३१५-२५) के बीच अनुमानित किया गया है। इसके रचयिता कवि देवेन्द्र सूरि थे। उनके गुरु का नाम मुनि जगचन्द्र सूरि था।[18]

इस रास-काव्य मे कृष्ण के सहोदर अनुज मुनि गजसुकुमाल का चरित-वर्णन है। मुनि गजसुकुमाल का आख्यान जैन परम्परा में प्रसिद्ध है। आख्यान के अनुसार, एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन हुआ। उनके साथ जो उनके शिष्य मुनिगण थे उनमे समान रूप व आकृतिवाले छह सहोदर भी थे। वे दो-दो के दल मे भिक्षार्थ देवकी के महलों मे पहुँचे। देवकी को पहले तो यह भ्रम रहा कि वही मुनि बार-बार भिक्षा के लिए उसके महलो मे आये हैं। परन्तु जब उसे वास्तविक स्थिति ज्ञात हुई तो उसे कृष्ण से पूर्व उत्पन्न अपने छह पुत्रो की स्मृति हो आयी। अगर वे जीवित होते तो आज ऐसे ही होते—इस विचार ने उसे विकल कर दिया। वह अत्यन्त उदास हो गयी। विशेषकर इसलिए और भी कि सात पुत्रो को जन्म देकर भी वह किसी का बाल्यसुख तक अनुभव न कर सकी। ऐसे ही समय कृष्ण माता के चरण-वन्दन को आये। माता को दुखी व उदास देख तथा उसका कारण जान उन्होने माता की मनोरथ पूर्ति के लिए तप किया। प्रभाव स्वरूप काल पा कर देवकी को पुत्रोत्पन्न हुआ। गज शावक की भाँति सुकुमार होने के कारण पुत्र का नाम गजसुकुमार (गजसुकुमाल) रखा गया। गजसुकुमाल के युवा होने पर कृष्ण ने उसका विवाह-सम्बन्ध द्वारिका के ही सोमिल नामक ब्राह्मण की रूपवती कन्या सोमा से निश्चित किया। उन दिनो अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारिका आये हुए थे। गजसुकुमाल उनका उपदेश श्रवण कर वैराग्य की दीक्षा लेने का निश्चय प्रकट करते हैं। माता देवकी, भाई कृष्ण तथा अन्य परिवार-जन के समझाने-बुझाने के बाद भी उनका वैराग्य ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय अपरिवर्तित रहता है। अन्तत उन्हे आज्ञा देनी पडती है। गजसुकुमाल अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण करते हैं तथा उनकी आज्ञा से श्मसान भूमि मे जाकर ध्यानावस्थित हो जाते हैं। सन्ध्यावेला मे यज्ञ के लिए समिधा लेकर लौटते हुए सोमिल ब्राह्मण उस श्मशानभूमि के पास से निकलते हैं तथा गजसुकुमाल को मुण्डित सिर व ध्यानावस्थित देखकर उनका मन क्रोध व क्षोभ से भर जाता है। यह सोचकर कि 'इसने मेरी निर्दोष पुत्री के जीवन से खिलवाड करने का निश्चय किया है, मैं भी इससे बदला लूँगा', वे पास ही जलती हुई चिता मे से अगारे एकत्रित कर लाते हैं तथा गजसुकुमाल के मुण्डित सिर पर गीली मिट्टी का अवरोध बनाकर अगारे भर देते है। मुनि निर्विकार भाव से भयकर वेदना को सहन करते हुए जीवन मुक्त होते हैं।

गजसुकुमाल का यह परम्परागत आख्यान कृति मे ३४ छन्दों मे वर्णित है।

इस कृति मे कृष्ण के वीर व पराक्रम सम्पन्न राजपुरुष के स्वरूप का वर्णन है। उसकी तुलना इन्द्र से करते हुए कवि लिखता है—

> नयरिहिं रज्जु करेई, तहि कहु नरिवूं।
> नरवइ मति सणहो जिव सुरगण इंदू ॥

कृष्ण के द्वारा चाणूर मल्ल, कंस तथा-जरासन्ध हनन का कवि ने उल्लेख किया है। वे वासुदेव राजा हैं। शख, चक्र तथा गदा आदि का धारण करना जैन परम्परानुसार वासुदेव का लक्षण है। इसका भी कवि ने उल्लेख किया है। यथा—

> सख चक्क गय पहरण धारा।
> कस नराहिव कय सहारा ॥
> जिण चाणउरि मल्लु वियरिउ।
> जरासिंधु बलवतऊ धाडिउ ॥

कृति की भाषा से १३ वी शताब्दी ई० के भाषारूप की जानकारी मिलती है। इसकी भाषा को परवर्ती अपभ्र श अथवा प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है, जो कि हिन्दी भाषा का आदिकालिक रूप है।

प्रद्यु म्नचरित

प्रद्युम्नचरित कवि सधारू की रचना है। यह कृति सम्पादित होकर प्रकाशित हो गयी है। इसका रचनाकाल सन् १३५४ (सवत् १४११) माना गया है।[११]

कृति मे श्री कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र प्रद्यु म्न का जीवन-चरित वर्णित है। कृति का प्रारम्भ द्वारिका के वैभव तथा द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की शक्ति-सम्पन्ता के वर्णन से हुआ है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है—

यादव-कुल शिरोमणि श्रीकृष्ण द्वारिका में राज्य करते थे। सत्यभामा उनकी पटरानी थी। एक दिन नारद का द्वारिका आगमन हुआ। सत्यभामा के महल मे उनका सम्मान न होने के कारण वे कुपित हो गये। उन्होने बदला लेने की भावना से किसी अधिक सुन्दरी राज-कन्या से कृष्ण का पाणिग्रहण कराने का निश्चय किया। इसके लिए कुण्डलपुर के राजा भीष्म की कन्या रुक्मिणी का उन्होने चुनाव किया तथा कृष्ण व रुक्मिणी मे प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया। नारद की सूचनानुसार श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया व उसके लिए निश्चित वर शिशुपाल का युद्ध मे वध किया। काल पाकर रुक्मिणी ने एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम प्रद्यु म्न रखा गया। जन्म की छठी रात्रि को प्रद्यु म्न का धूमकेतु असुर द्वारा अपहरण कर लिया गया। बाद मे वह विद्याधर राजा काल-सवर व उसकी पत्नी कचनमाला को मिला जिन्होने उसका लालन-पालन

किया। कालसंवर के यहाँ १२ वर्ष तक रहकर उसने बहुत-सी विद्याएँ सीखीं व अलग-अलग संग्राम में पराक्रम हुआ। १२ वर्ष बाद वह पुन. अपने माता-पिता से आकर मिला। श्रीकृष्ण ने उसका राज्याभिषेक किया तथा विवाह सम्पन्न कराया। बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहने के बाद नेमिनाथ की वाणी से प्रभावित हो एक दिन प्रद्युम्न ने विरक्त होकर दीक्षा ले ली तथा महान् तप करके सिद्धत्व प्राप्त किया।

कवि ने ७०१ पद्यों मे प्रद्युम्न की उक्त कथा कही है। यह काव्य ६ सर्गों में विभाजित है। घटनाओ का क्रम शृंखलाबद्ध है। कृति मे विरह, मिलन, युद्धों व नगरों के सरस वर्णन उपलब्ध हैं। यह वीररसपूर्ण रचना है। कृष्ण-शिशुपाल युद्ध, प्रद्युम्न-सिंहरथ युद्ध, प्रद्युम्न-कालसंवर युद्ध, प्रद्युम्न-कृष्ण युद्ध आदि का सविस्तार वर्णन हुआ है।

कृष्ण का वर्णन एक महान् शक्तिशाली नरेश के रूप मे किया गया है। वे अपरिमित बलबल व साधनों से सम्पन्न थे। वे त्रिखण्डाधिपति (अर्द्ध चक्रवर्ती) राजा थे। उनकी गर्जना से पृथ्वी काँप जाती थी। वे अपने शत्रुओं के दमन में पूर्णत समर्थ थे। यथा—

> दलबल साहण गयत अनन्त। करइ गर्व मेदनी विलसंतु॥
> तीन खण्ड चक्केसरी राउ। अरियण दल भानइ भरिवाउ॥१.२१॥

कृष्ण का स्वरूप वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि—वे शंख, चक्र तथा गदा धारण करते हैं। बलभद्र उनके अग्रज हैं। वे अद्वितीय पराक्रम सम्पन्न हैं। सात ताल वृक्षो को एक बाण से गिराने मे समर्थ हैं। वे अपने कोमल हाथों से वज्र को भी चूर-चूर कर सकते हैं। यथा—

> संख चक्क गदापहण जासु, अरु बलिभद्र सहोदर तासु।
> सात ताल जो बाणनि हणइ, सो नारायण नारद भणइ॥५१॥
> आपी ताहि वज्र मुंदड़ी, सोहइ रतन पदारथ जड़ी।
> कोमलि हाथ करइ चकचूर, सो नारायण गुण परिपूर॥५२॥

पराक्रमी राजा कृष्ण अपनी तलवार हाथ मे लेकर युद्धभूमि मे ऐसे शोभित होते है जैसे मानो स्वय यमराज उपस्थित हैं। उनके खड्ग धारण करने पर समस्त लोक आकुल-व्याकुल हो जाता है। स्वय देवराज इन्द्र तथा शेषनाग भी व्याकुल हो जाते है—

> तब तिहि धनहर धालिउ रालि, चन्द्र हंस कर लीयो सभालि।
> बीजु सरिसु चमकइ करवालु, जाणी सु जीभ पसारै काल।
> जबहि खरग हाथ हरि लयउ, चन्द्र रयणि बाबइ कर गहिउ।
> रथ ते उतरि चले भर जाम, तीनि भुवन अकुलाने ताम॥

हुदु वदु यंदु मैं खलभलउ, जाणी गिरि पर्वतउ डलहलउ।
मन मा कहइ सुरगिनि नारि, अजयहु रहइ कहसी नारि॥"

वीर रस के अतिरिक्त अद्भुत रस (युद्ध में विद्याओं के प्रयोग के वर्णन में), वीभत्स रस (युद्धोपरान्त रणभूमि के दृश्य वर्णन में), करुण रस (पुत्र-वियोग से संतप्त रुक्मिणी की दशा वर्णन में), शृंगार रस (रुक्मिणी सौन्दर्य वर्णन, कृष्ण-रुक्मिणी मिलन आदि प्रसगो मे) आदि का भी वर्णन हुआ है। अन्तिम सर्ग में नायक प्रद्युम्न द्वारा वैराग्य ग्रहण करने के वर्णन में शान्त रस का परिपाक हुआ है।"

प्रद्युम्न चरित ब्रजभाषा का काव्य है। ब्रजभाषा के सर्वमान्य लक्षण प्रद्युम्न चरित की भाषा में पूर्णरूप से मिलते हैं। प्रद्युम्न चरित की ब्रजभाषा, राजस्थानी प्रभावित है। काव्य का मुख्य छन्द चौपई है। इसके अतिरिक्त वस्तु बन्ध, ध्रुवक, दोहा, सोरठा आदि छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। काव्य में अलकारों का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, स्वभावोक्ति आदि अलकारों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

बलभद्र चौपई

इस कृति के रचयिता कवि यशोधर थे। ये काष्ठा सघ के जैन सन्त थे। अपने गुरु विजयसेन की वाणी पर मुग्ध होकर तथा ससार को असार समझकर आपने वैराग्य ग्रहण कर लिया तथा आजन्म ब्रह्मचारी का जीवन बिताया। इनका समय सवत् १५२० से १५९० का कहा गया है।[41]

'बलिभद्र चौपई' १८९ पद्यो मे रचित काव्य है जिसे कवि ने सन् १५२८ (स० १५८५) में पूर्ण किया था। तत्सम्बन्धी उल्लेख कृति मे इस प्रकार है—

संवत् पनर पच्यासीए स्कन्ध नगर मझारि।
भवणि अजित जिनवर तणी, ए गुण गाया सारि॥

कृति मे कृष्ण के बडे भाई बलभद्र का चरित वर्णन है। कृति की कथावस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है—

द्वारिका पर श्रीकृष्ण का राज्य था। बलभद्र उनके बड़े भाई थे। एक बार तीर्थंकर नेमिनाथ का द्वारिका बिहार हुआ। दोनो भाई नगर के अनेक प्रजाजन के साथ नेमिनाथ के दर्शनार्थ गये। नेमिनाथ से द्वारिका के भविष्य के बारे में पूछने पर उन्होंने १२ वर्ष बाद द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका-दहन की भविष्यवाणी की। १२ वर्ष बाद द्वारिका नगरी के नष्ट हो जाने पर दोनो भाई कृष्ण तथा बलराम वहाँ से चले। मार्ग मे वन मे सोते हुए कृष्ण को हरिण के धोखे से जराकुमार द्वारा छोडा तीक्ष्ण बाण लगा और वे काल को प्राप्त हुए। उस समय बलभद्र वन में पानी की खोज में गये हुए थे। लौटने पर वे बडे शोकाकुल हुए

तथा विलाप करने लगे। उन्हें इतना तीव्र आघात लगा कि भाई के मोह में छह माह तक वे उनके मृतक शरीर को लिये घूमते रहे। अन्त में एक मुनि के प्रबोधन से विरक्त होकर तपस्या करते हुए उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। इसके १८६ पद ढाल, दूहा एवं चौपई छन्दों में विभक्त हैं। इस काव्य की भाषा-शैली को समझने की दृष्टि से कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं—

द्वारिका नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने उसे इन्द्रपुरी के समान बताया है। यह बारह योजन विस्तारवाली थी। वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थी। अनेक धनपति एवं वीरवर वहाँ निवास करते थे। श्रीकृष्ण याचकों को मुक्त हस्त से दान देते थे—

> नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
> बार जोयण ते फिर सुवसि, ते देखी जनमन उलसि ।।११।।
>
> नव खण तेर खणा प्रासाद, हह श्रेणि सम लागु वाद।
> कोटीधज तिहां रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहिं मणा ।।१२।।
>
> याचक जनति देइ दान, न हीयड हरख नहीं अभिमान।
> सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ।।१३।।

द्वारिका के विनाश तथा कृष्ण के परमधाम गमन की घटना को नेमिनाथ की भविष्यवाणी के रूप में वर्णित किया गया है—

> द्वीपायन मुनिवर नै सार, ते करसि नगरी संघार।
> मद्य भांड जे नासि कही, तेह थकी बली जलसि सही ।।६२।।
>
> पोरलोक सवि जलसि जिसि, वे बन्धव नीकसणु तिसि।
> तह्मा सहोदर जराकुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ।।६३।।

यह रास उनकी अनेक कृतियों में सबसे अच्छी कृति बतायी जाती है। बलराम-कृष्ण के सहोदर प्रेम के आदर्श की प्रस्तुति इसमें बहुत सुन्दर है।

हरिवंशपुराण

प्रस्तुत कृति के रचयिता शालिवाहन हैं। उन्होंने जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (संस्कृत) के आधार पर इसकी रचना की है। इसका उल्लेख कृति की प्रत्येक सन्धि के अन्त में इस प्रकार उपलब्ध है—'इति श्रीहरिवंशपुराणसंग्रहे भव्य-समगलकर्णे, आचार्यश्री-जिनसेन-विरचिते तस्योपदेशे श्रीशालिवाहन-विरचिते।' इस ग्रन्थ की रचना (सं० १६६३ ई० सन् १६३८) में पूर्ण हुई, कवि ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

संवत् सोरहसै तहुं अट्ठ, ऊपर पचासव धरु।
भादवमास कृष्णपक्षि जानि, सोमवार बुधवार बखानि ।।३१७८।।

इसकी रचना के समय कवि आगरा में निवास करता था और वहीं इसकी रचना पूर्ण हुई। आगरा में तब शाहजहाँ का शासन था—

नगर आगरा उत्तम थानु, शाहजहाँ साहि तिथें मनु भानु ।।३१८१।।

प्रस्तुत कृति की हस्तलिखित प्रतियाँ कई स्थानो पर उपलब्ध हैं।[४२]

इस कृति की १२ से २६ तक की सन्धियो मे कृष्णचरित का वर्णन है। प्रथम सन्धि मे कवि ने २४ तीर्थंकरों तथा सरस्वती की वन्दना की है। दूसरी और तीसरी सन्धि मे तीनो लोकों के वर्णन के पश्चात् चौथी सन्धि मे आदि तीर्थंकर ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती का चरित वर्णित है। ४ से ११ तक की सन्धियो मे प्रथम २१ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ८ बलदेव, ८ वासुदेव तथा ८ प्रतिवासुदेव का संक्षिप्त चरितवर्णन है। इसके बाद सम्पूर्ण कृति में २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा नवम वासुदेव कृष्ण का चरित विस्तार से निरूपित है। वस्तुत. कृति की मुख्य आधिकारिक कथावस्तु इन्ही दो शलाकापुरुषो का चरित-वर्णन है। कृष्ण के अनुज गजसुकुमाल तथा पुत्र प्रद्युम्न का चरित-वर्णन भी अवान्तर प्रसगो के रूप मे हुआ है।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित ब्रजभाषा है। यह मुख्यत दोहा, चौपाई [छन्दो में रचित है।

कृष्ण के वीर श्रेष्ठ पुरुष के व्यक्तित्व का वर्णन ही कृति मे मुख्यत हुआ है। कस की मल्लशाला मे किशोर कृष्ण का पराक्रम देखिए—

चडूर मल्ल उठ्यो काल समान,
वज्रमुष्टि दैयत समान।
आनि कृष्ण दोनों कर गहै,
फेर पाई धरती पर बहै ।।१७८०-८१।।

रुक्मिणी-हरण करते समय कृष्ण जब अपना पाचजन्य शख फूकते है तो मेरु पर्वत सहित सम्पूर्ण धरामण्डल थरथरा उठता है तथा शत्रु का सैन्यदल काँपने लगता है—

लई रुकमणि रथ चढ़ाई, पंचाइण तब पूरियो।
णि सुनि वयणु सब सैन कप्यो महिमण्डल थर हरयो ।।
मेरु कमठ तथा शेष कप्यो, महलौ जाई पुकारियो।
पुहमि राहु अवधारियो, रुक्मणि हरि लै गयो ।।१६५३।।

इस अवसर पर हुए युद्ध के ओजस्वी वर्णन मे कवि द्वारा प्रयुक्त हुई भाषा

बहुत ही समर्थ है। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सेझपाल अरु भीसम राउ,
पैदल मिले न सूझे ठाउ।
छोरण बूंदन उछली खेह,
आयो गरजे आंदो मेह॥
सारंगपाणि धनक ले हाथ,
शशिपाले पठइ जम साथ।
हाकि पचारि उठे दोऊ वीर,
बरसं बाण शयण घनघोर॥१६६३॥

कृष्ण तथा बलराम की वीरता और पराक्रम कृति मे अनेक स्थलो पर वर्णित है।

कृष्ण का यह अद्वितीय पराक्रम उनके श्रेष्ठ अर्द्ध चक्रवर्ती राजा के स्वरूप के अनुकूल है। जरासन्ध के साथ युद्ध मे उनका यह वीर स्वरूप साकार हो उठा है। जिस चक्र को जरासन्ध ने कृष्ण को मारने के लिए फेंका वही चक्र कृष्ण की प्रदक्षिणा करके उनके दाहिने हाथ पर स्थिर हो जाता है और पुन कृष्ण द्वारा छोडे जाने पर वही जरासन्ध का सिर काट डालता है। कवि के शब्दो मे—

तब मागध ता सन्मुख गयौ,
चक्र फिराई हाथि करि लयौ।
तापर चक्र डारियो आया,
तीनो लोक कँपीयो ताया॥
हरि को नमस्कार करि आनि,
दाहिने हाथ चढ्यो सो आनि।
तब नारायण छोड्यो सोइ,
मागध टूक रक्त-सिर होइ॥

कृष्ण के उक्त वीर स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त प्रस्तुत कृति मे बालक कृष्ण के दूध-दही खाने-फैलाने का भी वर्णन हुआ है। यथा—

आपुन खाई ग्वाल घर देइ,
घर की आर विराणो लेई।
घर-घर बासण फोड़े आई।
दूध-दही सब लेहि छिडाई॥१७०७-८॥

नेमीश्वर रास

इसके रचयिता नेमिचन्द्र हैं। इसकी रचना ई० सन् १७१२ (१७६९ वि०

स०) मे हुई। कृति के अन्त मे कवि ने अपना विस्तृत परिचय दिया है जिसमे अपनी गुरु-परम्परा, कृति का रचनाकाल, रचनास्थान आदि का सकेत इस प्रकार किया है—

अबावती सुमथान सवाई जै सिंह महाराज ई।
पातिसाह राखै मान, राज करै परिवार स्यु॥

अबावती नगरी (आमेर-जयपुर) मे, जहाँ कि राजा सवाई जयसिह का राज्य है, जिनका कि बादशाह भी सम्मान करता है, इस कृति की रचना हुई।

रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

सतरासै गुणहत्तरे सुदि आसोज दसै रवि जाणि तो।
रास रच्यौ श्री नेमि को बुधिसार मैं कियो बखान तो॥

अर्थात् सवत् १७६६ आसोज शुक्ला १०, रविवार को इमकी रचना पूर्ण हुई। कवि ने अपने गुरु का नाम जगतकीर्ति बताया है। ये मूलसघ, बलात्कार गण सरस्वतीगच्छ के आचार्य थे। प्रस्तुत कृति की रचना हरिवशपुराण के आधार पर की गई है—

हरिवश की मै बारता, कही विविध प्रकार।
नेमिचन्द्र की बीनती, कवियण लेहु सुधार॥

कृति मे हरिवशपुराण (जिनसेन) के अनुसार ही कृष्ण का चरित-वर्णन हुआ है। कृति की कथावस्तु ३६ अधिकारो (सर्ग सूचक शब्द) मे विभक्त है। कृति का प्रारम्भ मगलाचरण से हुआ है। श्रेष्ठ पुरुषो की वन्दना प्रथम दो अधिकारो मे की गयी है। तृतीय अधिकार से कथावस्तु का प्रारम्भ होता है। कृष्ण-जन्म, उनकी बाल-क्रीडाएँ, कस-वध, यादवो का द्वारिका निवास, रुक्मिणी-हरण व शिशुपाल-वध, नेमिनाथ का जन्म, कृष्ण-जरासन्ध युद्ध, द्रौपदी हरण, कृष्ण का द्रौपदी को वापस लाना, कृष्ण का पाण्डवो से कुपित होना तथा पाण्डवो का हस्तिनापुर से निर्वासन नेमिनाथ का गृह-त्याग, तप व कैवल्यज्ञान प्राप्ति, उनके द्वारिका आगमन के प्रसग, कृष्ण के पारिवारिक सदस्य—रानियो-पुत्रो आदि का उनके पास दीक्षा लेना, द्वारिका विनाश, कृष्ण का परमधाम-गमन, बलराम का तप व मुक्ति आदि प्रसगो का क्रमश वर्णन हुआ है। कृति के प्रारम्भ मे प्रमुखत कृष्ण-चरित का वर्णन है तथा अन्तिम अधिकारो मे नेमिनाथ चरित का।

कृष्ण कृति के प्रमुख पात्र है। कृति मे अधिकतर उनके वीरतापूर्ण कृत्यो का वर्णन किया गया है। इस वर्णन मे वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

कान्ह गयो जब चौक मे, चाण्डूर आयो तिहि बार।
पकडि पछाड्यो आवतो, चाण्डूर पहुच्यो यम द्वार।

कंस कोप करि उठ्यो, पहुच्यो जादुराय पे।
एक पलक मे मारियो जम-घरि पहुच्यो जाय तो ।।
जै जै कार सबद हुआ, बाजा बज्या सार।
कंस मारि घीस्यो तबै, पलक न लाइ बार ।।

कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण की घटना का कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

कैसो मन मे चिन्तवे, परवत गोरधन लीयो उठाय।
चिटी आगुली ऊपरे, तलिउ था सब गोपी-नाथ ।।

कृति के अन्तिम अश मे कृष्ण की धम विषयक रुचि तथा नेमिनाथ के प्रति श्रद्धाभाव का वर्णन है। कवि के शब्दो मे—

नमस्कार फिरि-फिरि कियो, प्रश्न कियो तव केशोराय।
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को धर्म अधर्म कह्यो जिनराय ।।

कृति मे कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन द्रष्टव्य है। इस रूप मे बालक कृष्ण के गोपाल वेष का तथा दधि-माखन खाने व फैलाने का वर्णन हुआ है। यथा—

माखण खायरु फैलाय, मात जसोदा बांधे आणि तो।
डरपायो डरपै नहीं माता तणीय न मानै काणि तो।

उनका गोपाल वेश-वर्णन भी देखिए—

काना कुण्डल जगमगे, तन सोहे पीताम्बर चीर तो।
मुकुट बिराजे अति भलो, बसी बजावे स्याम शरीर तो।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। तद्भव शब्दो का बाहुल्य है। दोहा, सोरठा छन्दो का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है।

खुशालचन्द काला कृत हरिवशपुराण व उत्तरपुराण

कृष्णचरित से सम्बन्धित उक्त दोनो हिन्दी काव्य-कृतियो की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ जैन ग्रन्थ-भण्डारो मे उपलब्ध हैं। ये दोनो कृतियाँ क्रमश जिन-सेनाचार्य कृत हरिवशपुराण (सस्कृत) तथा गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण (सस्कृत) की शैली पर रचित है। हरिवशपुराण की रचना सवत् १७८० (सन् १७२३) तथा उत्तरपुराण की रचना सवत् १७९९ (सन् १७४२) मे पूर्ण हुई, ऐसा उल्लेख स्वय ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थो की समाप्ति पर किया है।

इन ग्रन्थो के रचयिता श्री खुशालचन्द काला खण्डेलवाल जाति के दिगम्बर जैन थे। इनका जन्म टोडा (जयपुर) नामक ग्राम में हुआ था। बाद वे सागानेर

(जयपुर) मे आकर बस गये। उनका शेष जीवन सागानेर मे ही व्यतीत हुआ। यही पर उन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थो की रचना की थी। कवि के सम्बन्ध मे यह जानकारी उत्तरपुराण मे उपलब्ध है।[२१]

हरिवशपुराण तथा उत्तरपुराण मे परम्परागत जैन पौराणिक कथा-वस्तु का वर्णन हुआ है। कथावस्तु व वर्ण्य विषयो का आधार सस्कृत पुराण ग्रन्थ हैं। तदनुसार हरिवशपुराण मे तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा उनके समकालीन कृष्ण, बलराम, जरासन्ध आदि शलाकापुरुषो का चरित वर्णित है। उत्तरपुराण मे ऋषभदेव के अतिरिक्त सभी अन्य तेईस तीर्थंकरो व उनके समकालीन शलाका-पुरुषो के चरित का वर्णन सक्षेप मे किया गया है।

दोनों कृतियो मे बोलचाल की सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है। दोनो ही प्रसाद गुण सम्पन्न रचनाएँ हैं। चौपई, चौपाई, दोहा, सोरठा आदि मात्रिक छन्द कृतियो मे प्रमुखता से प्रयुक्त हुए है। सर्ग के लिए सन्धि शब्द का प्रयोग है।

आलोच्य कृतियो मे कृष्ण का परम्परागत वीर श्रेष्ठ पुरुष का जैन मान्यता का व्यक्तित्व वर्णित है। दोनो कृतियो से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है—

बालक कृष्ण गोकुल मे खेलते-कूदते, अनेक पराक्रमपूर्ण काम करते बडे हो रहे थे। कस को जब किसी निमित्तज्ञानी से यह जानकारी मिली कि उनका शत्रु गोकुल मे वृद्धि को प्राप्त हो रहा है तो उसने अपने पूर्व भव मे सिद्ध की हुई देवियो का, कृष्ण का प्राणान्त करने के लिए, आह्वान किया। देवियो न जो अनेक प्रयत्न किये, उनमे एक प्रयत्न मूसलाधार वर्षा करके कृष्ण सहित समस्त गोकुल को डुबा देने का भी था, परन्तु पराक्रमी कृष्ण ने गोवर्द्धन को ही उठा लिया और इस प्रकार गोकुल की रक्षा की। देवियो के समस्त प्रयत्न निष्फल हो गये। कवि के वर्णनानुसार—

> **देवी वन मे आय मेघ तनी बरषा करी।**
> **गोवरधन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाव सौं॥**

प्रयत्न की इस निष्फलता के बाद, कस ने कृष्ण को मल्ल युद्ध का आमन्त्रण दिया। मल्ल-युद्ध मे आने के अवसर पर उन्हे कुचल कर मार डालने के लिए मदमस्त हाथी छुडवा दिया। पराक्रमी, महान् बलशाली व धैर्यवान कृष्ण ने हाथी के दाँत उखाड लिये और उसे मार कर भगा दिया। सामने आने पर अपने से दुगने मल्ल को फिराकर दे मारा। और अन्त मे, क्रोधित हुए कस को मारने के लिए अपनी ओर आते देख, उसे पैर पकड, पक्षी के समान फिराकर पृथ्वी पर दे मारा। अपने बलवान शत्रु को मार कर पराक्रमी कृष्ण उस सभा-मण्डप मे अत्यधिक शोभित हुए। कवि ने अपने उत्तरपुराण मे कृष्ण के इस वीर स्वरूप का बडे उत्साह से वर्णन किया है। यथा—

जाके सन्मुख दोड़्यो जाय। दंत उपारि लये उमगाय ॥
ताही दंत थकी गज मारि। हस्ति भाजि चली पुर मझारि ॥
ताहि जीति शोभित हरि भए। कस आप मल्ल मृति लखि लए ॥
रुधिर प्रवाह थकी विपरीत। देख क्रोध धरि करि तजि भीति ॥
आप मल्ल के आयो सोय। तब हरि वेग अरि निज जोय ॥
चरण पकरि तब लयो उठाय। पखो सन उत ताहि फिराय ॥

फेरि धरणि पटक्यो तबै कृष्ण कोप उपजाय।
मानू यम राजा तणो, सो ले भेंट चढ़ाय ॥

जरसन्ध के साथ हुए युद्ध मे कृष्ण का यही पराक्रम अपने पूर्णरूप में प्रकट हुआ है। दोनो कृतियो मे कृष्ण की वीरता तथा पराक्रम के ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं।

नेमिचन्द्रिका

नेमिचन्द्रिका कवि मनरगलाल की रचना है। ग्रन्थ के अन्त मे कृतिकार ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार कवि कान्यकुब्ज (कन्नौज) निवासी पल्लीवाल जैन था। उसके पिता का नाम कनोजी लाल था। कवि ने अपने मित्र गोपालदास के आग्रह पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी। अपनी कृति की कथा-वस्तु के लिए उसने जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण को आधार बनाया। कृति का रचनाकाल कवि के उल्लेखानुसार वि०स०१८८१ (सन् १८२३) है।[४४]

कृति मे कुल ३८१ छन्द है। प्रारम्भ मे जिनेश्वर व गणेश की वन्दना है। तत्पश्चात् क्रमश द्वारिका नगरी का वर्णन, वहाँ के शक्तिसम्पन्न वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन, नेमिनाथ के माता-पिता का वर्णन, नेमिजन्म और उनकी बाल-क्रीडाएँ, नेमि की सुन्दरता एव वीरता, नेमि की बरात का वणन, नेमिनाथ का वैराग्य, केवलज्ञान तथा मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन हुआ है। वस्तुत यह कृति नेमिनाथ की परम्परागत कथावस्तु पर आधारित खण्डकाव्य की कोटि की रचना कही जा सकती है।

कृति की भाषा सामान्य जन द्वारा प्रयुक्त सरल हिन्दी है। रचना दोहा, सोरठा, चौपाई, अडिल्ल, भुजगप्रयात आदि छन्दो मे है। शान्त रस मे कृति का समाहार हुआ है। शान्त के अतिरिक्त करुण तथा विप्रलभ श्रृगार के उदाहरण द्रष्टव्य है। सासारिक अस्थिरता एव झूठे स्वार्थ से प्रेरित विरक्ति के भावो से निर्वेद की पुष्टि हुई है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

अथिर वस्तु जितनी जग माहि। उपजत बिनसत ससय नाहि ॥
स्वारथ पाय सकल हित करे। बिन स्वारथ काउ हाथ न धरे ॥

ऐसे ही भावो से प्रेरित होकर कृति के नायक नेमिकुमार ससार से विरक्त

होते है। तथा कठोर तप से अपने सभी कर्मों को क्षय कर निर्वाण अवस्था को प्राप्त होते हैं।

कृष्ण वासुदेव के चरित्र वर्णन मे कवि ने उनकी वीरता, पराक्रम तथा श्रेष्ठ सामर्थ्य से युक्त नरेश के रूप का वर्णन किया है।

वीर कृष्ण ने कालिय नाग का मर्दन किया। अत्याचारी कस को मारकर उसके पिता उग्रसेन को सिंहासनासीन किया। शिशुपाल तथा शक्तिशाली जरासन्ध पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार अपने कार्यों द्वारा अनीति के मार्ग को निरावृत किया। कृष्ण के इन कार्यों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

नाग साधि कर के मुरलीधर। सहस पत्र ल्याये इदीवर ॥
कस नास कीन्हो छिन माहिं। उग्रसेन कहू राज्य कराहिं ॥
जीत लीन शिशुपाल नरेश। जरासन्ध जीतो चक्रेस ॥
इत्यादिक बहु कारण करे। सकल अनीति मार्ग तिन हरे ॥

ऐसा पराक्रमी, सामर्थ्यवान तथा जरासन्ध जैसे चक्रधारी नरेश का हन्ता कृष्ण भला क्यो नही भारतभूमि के सभी राजाओ मे श्रेष्ठ व पूजनीय होगा! कवि के अनुसार, भारतभूमि के सभी नृपतिगण उनके चरणो के सेवक थे तथा स्वय देवगण उनकी आज्ञा पालन करते थे। यथा—

सकल भूप सेवत तिन पाय। देव करत आज्ञा मन भाय ॥

इस प्रकार अपने समकालीन राज-समाज मे पूजनीय, पराक्रमी और वीर राजपुरुष कृष्ण का स्वरूप-वर्णन इस कृति की प्रमुख विशेषता है।

जैन साहित्य में कृष्ण-कथा

जैन-कथा की प्राचीनता

धर्म-प्रचार मे लोक-प्रचलित कथाओ, आख्यानो, जनश्रुतियो का उपयोग प्राय किया जाता रहा है। इसी प्रकार लोकविश्रुत महापुरुषो के जीवन-सन्दर्भों का उल्लेख भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। श्रीकृष्ण के जीवन-सन्दर्भों का जैन-परम्परागत साहित्य मे ग्रहण भी इसी क्रम मे हुआ है। कृष्ण-कथा का जो स्वरूप तीर्थंकर महावीर के समय मे प्रचलित रहा होगा, उसका उन्होने अपने धर्म-प्रचार मे उपयोग किया होगा। अत आगमिक कृतियो मे कृष्ण-कथा के जो सन्दर्भ उपलब्ध हैं, बहुत सम्भव है वे ई० पू० छठी शताब्दी मे अर्थात् तीर्थंकर महावीर के समय मे इस रूप मे प्रचलित रहे हो।

आगमिक साहित्य का जो रूप आज विद्यमान है वह ई० सन् पश्चात् ४५३-४६६ के मध्य बल्लभी मे आयोजित एव आचार्य देवर्द्धिगणी की अध्यक्षता मे सम्पन्न श्रमण सघ द्वारा सकलित किया गया था, अत स्वाभाविक ही, महावीर स्वामी के लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् सम्पादित व सकलित कृतियो में कृष्ण से सन्दर्भित प्रसग परिवर्धित व परिवर्द्धित हो गये होगे। फिर भी श्रीकृष्ण के जीवनचरित का जो रूप जैन आगम साहित्य मे उपलब्ध है, वह पाँचवी शताब्दी ई० का तो निर्विवाद है।

जैनागमो मे कृष्ण-कथा

आगमिक कृतियो मे कृष्णचरित किसी क्रमबद्ध रूप मे उपलब्ध नही है। कृष्ण से सम्बन्धित प्रसग विविध कृतियो मे यथा सन्दर्भ वर्णित हैं। इन कृतियो मे ज्ञातृधर्मकथा, अन्तकृद्दशा, प्रश्न-व्याकरण, उत्तराध्ययन तथा निरयावलिका मुख्य हैं। इन मे वर्णित प्रसगो के आधार पर श्रीकृष्ण के सन्दर्भ मे निम्नलिखित तथ्यो की जानकारी प्राप्त होती है—

(१) सोरियपुर नगर मे वसुदेव नाम के राजा थे। उनकी दो भार्याएँ—रोहिणी और देवकी थी। इनसे उनके बलराम तथा केशव (कृष्ण) दो पुत्र थे।[1]

(२) वसुदेवादि दस भाई तथा दो बहिनें थी। भाई थे—समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र तथा वसुदेव। बहिनें थीं—कुन्ती और माद्री।[2]

(३) कृष्ण ने अपने जीवन-काल मे अनेक वीरतापूर्ण कृत्य किये। इन कृत्यो मे अरिष्टबैल का वध करना, यमलार्जुन को नष्ट करना, कालियनाग का दर्प-हरण करना, महाशकुनि और पूतना को मारना तथा चाणूर, कस और जरासन्ध का वध करना सम्मिलित है।[3]

(४) कृष्ण द्वारिका के महान् महिमावान वासुदेव राजा थे। अनेक अधीनस्थ राजाओ, ऐश्वर्यवान नागरिको सहित वैताढ्यगिरि (विन्ध्याचल) से सागर पर्यन्त दक्षिण भरत क्षेत्र उनके प्रभाव मे था।[4]

(५) कृष्ण वासुदेव, बाइसवें जैन तीर्थंकर अर्हत अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे। अरिष्टनेमि के प्रति उनकी स्वाभाविक श्रद्धा थी। आगमिक कृतियों मे अरिष्टनेमि के द्वारिका-आगमन का तथा कृष्ण का सदलबल उनकी धर्म-सभा मे उपस्थित होने का प्रसग अनेक बार अनेक रूपो मे वर्णित हुआ है। इन प्रसगो मे कृष्ण के परिवार-जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिकों का अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का वर्णन भी है।

(६) यादवो का विनाश मदिरापान से उन्मत्त हो परस्पर लडने से हुआ। द्वारिका नगरी अग्नि मे भस्म हो गयी तथा कृष्ण का प्राणान्त जरत्कुमार के बाण लगने से कौशाम्बी वनप्रदेश मे हुआ।[5]

उक्त सन्दर्भों के आधार पर जैनागमो मे कृष्णकथा का जो स्वरूप प्रकट होता है, वह इस प्रकार है—कृष्ण वसुदेव-देवकी के पुत्र थे। वसुदेवजी दस भाई थे तथा ये सोरियपुर के राजा थे। कृष्ण अत्यन्त वीर व साहसी पुरुष थे। बलराम उनके भाई थे। कृष्ण ने मथुरा के राजा कस का वध किया। कालान्तर मे उन्होने अपने बाहुबल से द्वारिका मे यादवो का शक्तिशाली राज्य स्थापित किया तथा समस्त दक्षिण भरतक्षेत्र मे अपने प्रभाव का विस्तार किया। वे राजा वासुदेव के रूप मे अपने समकालीन राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ व पूजनीय मान्य हुए। उन्होने मगध के शक्तिशाली राजा जरासन्ध का भी वध किया। रुक्मिणी उनकी प्रमुख रानी थी। प्रद्युम्न, साम्ब आदि उनके अनेक पुत्र थे। कृष्ण के चचेरे भाई अरिष्टनेमि बाइसवें जैन तीर्थंकर रूप मे मान्य हुए। कृष्ण इनकी धर्म सभाओ मे उपस्थित होनेवाले प्रमुख राजपुरुष थे। कृष्ण के परिवार-जन मे से अनेक ने अरिष्टनेमि से वैराग्य की दीक्षा ग्रहण की। यादवो का विनाश सुरापान से हुआ। द्वारिका नगरी अग्नि मे नष्ट हो गयी तथा कृष्ण का परलोक-गमन जरा नामक शिकारी के बाण लगने से हुआ।

जैन कृष्ण-कथा का विकसित रूप हरिवशपुराण की कृष्ण-कथा

जैन साहित्य मे कृष्णचरित का यही मूल स्वरूप है। प्राकृत भाषा म निबद्ध जैनागमिक कृतियो के इतस्तत बिखरे प्रसगो के आधार पर हमने यह रूपरेखा

प्रस्तुत की। ये कृतियाँ जैनो के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ही मान्य है। दिगम्बर साहित्य मे कृष्णचरित की दृष्टि से जिनसेन का हरिवशपुराण (सस्कृत) महत्त्वपूर्ण कृति है। वस्तुत सस्कृत पुराणो व चरित-ग्रन्थो में कृष्ण-चरित अपेक्षाकृत क्रमबद्ध व विस्तार से वर्णित है। इन कृतियों मे वर्णित कृष्णचरित का मूल स्वरूप लगभग वही है जो ऊपर उद्धृत किया गया है। परन्तु कथा प्रसगो को विस्तार दे दिया गया है। साथ ही, पूर्वापर सम्बन्ध बनाये रखने के लिए अन्य प्रसग इधर-उधर से लेकर उन्हे अपने साँचे मे ढाल लिया गया है। इस स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए हम जिनसेन कृत हरिवशपुराण मे वर्णित कृष्ण-चरित की आधिकारिक कथावस्तु के प्रमुख सन्दर्भों का यहाँ उल्लेख कर रहे है। जिनसेन द्वारा वर्णित कृष्णचरित जैन साहित्य मे अत्यधिक महत्त्व का स्थान रखता है। बाद की सस्कृत, अपभ्र श व हिन्दी मे रचित अनेक कृतियो के लिए प्राय इसी पुराण की कथावस्तु आधार रही है—

हरिवशपुराण मे कृष्णकथा सक्षेप मे इस प्रकार है—

हरिवश मे राजा यदु हुआ, जिसके वशज यादव कहलाये। यदुवशी राजा सौरी (शूर) ने सौरीपुर नगर बसाया तथा वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। सौरी के दो पुत्र थे—अन्धक व भोजक। अन्धक को उत्तराधिकार मे सौरीपुर का प्रदेश मिला तथा भोजक को मथुरा का। अन्धक के दस पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थी। दसो पुत्र दशार्ह राजा के रूप मे जाने जाते थे। ये सभी सौरीपुर मे रहते थे। भोजक के उग्रसेन, महासेन, देवसेन (देवक) आदि पुत्र हुए। भोजक का बड़ा पुत्र उग्रसेन मथुरा का राजा बना।

अन्धक के दस पुत्रो मे सबसे बडे समुद्रविजय थे तथा सबसे छोटे वसुदेव। वसुदेव अत्यन्त सुन्दर थे। उन्होने अनेक विवाह किये।

वसुदेव शस्त्रविद्या के भी महान् ज्ञाता थे। वे सौरीपुर मे रहते समय अन्धक व भोजक कुलो के राजपुत्रो को शस्त्रविद्या की शिक्षा देते थे। इन राजपुत्रो मे उग्रसेन का पुत्र कस भी था। एक समय राजा वसुदेव कस आदि अपने शिष्यो के साथ राजा जरासन्ध के राजगृह गये। उस समय जरासन्ध की ओर से यह घोषणा की गयी थी कि जो वीर पुरुष सिहपुर के स्वामी राजा सिहरथ को जीवित पकडकर मेरे समक्ष उपस्थित करेगा, उसके साथ मे अपनी पुत्री जीवद्यशा का विवाह करूँगा और उसका इच्छित प्रदेश भेट मे दूँगा। वसुदेव ने सिहरथ को पकडने का निश्चय किया।

सिहरथ के साथ हुए भयकर युद्ध मे वसुदेव के रण कौशल एव कस के चातुर्य से सिहरथ पराजित हुआ। उसे जीवित पकडकर जरासन्ध के समक्ष प्रस्तुत किया गया। जरासन्ध ने प्रसन्न होकर पुत्री का विवाह वसुदेव से करना चाहा। परन्तु वसुदेव ने स्वय यह विवाह न करके कस के साथ जरासन्ध की पुत्री का विवाह

करा दिया। इस विवाह से शक्तिशाली बने कस ने बाद मे अपने पिता राजा उग्रसेन को कैद मे डालकर मथुरा का राज्य हथिया लिया।

कम वसुदेव का अत्यधिक उपकार मानता था। अत एक दिन वह बडी भक्तिपूर्वक वसुदेव को मथुरा लिवा लाया। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकी (राजा देवक की पुत्री) का विवाह उनके साथ बडे उत्साहपूर्वक सम्पन्न कराया। विवाह के पश्चात् कस के बहुत आग्रह के कारण वसुदेव मथुरा मे ही रहे आये।

एक दिन अतिमुक्तक मुनिराज से यह जानकर कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र न केवल उसके पति (कस) को अपितु पिता (जरासन्ध) को भी घातक होगा, जीवद्यशा ने यह समाचार कंस को दिया। तीक्ष्ण बुद्धि के धारक कस ने शीघ्र ही उपाय सोचकर वसुदेव से यह वचन माँग लिया कि 'प्रसूति' के समय देवकी का निवास मेरे ही घर मे रहा करे।

तदनतर देवकी ने क्रमश तीन युगल- पुत्रो को जन्म दिया। प्रत्येक बार इन्द्र की आज्ञा से सुनैगम नामक देव जन्मते ही देवकी-पुत्रो को सुभद्रिल नगर के सेठ सुदृष्टि की अलका नामकी सेठानी के यहाँ पहुँचा आया तथा उसके प्रसव मे उत्पन्न मृतक युगल- पुत्रो को देवकी के प्रसूतिगृह मे रख आया। शका युक्त कस ने तीनो ही बार मृतक युगलो को शिला पर पछाड दिया। देवकी के छहो पुत्र—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न तथा जितशत्रु सेठानी अलका के यहाँ पलते हुए वृद्धि को प्राप्त हुए।

एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर मे देवकी ने निम्नलिखित सात पदार्थ स्वप्न मे देखे—(१) उगता हुआ सूर्य, (२) पूर्ण चन्द्रमा, (३) दिग्गजो द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी, (४) आकाशतल से नीचे उतरता विमान, (५) ज्वालाओ से युक्त अग्नि, (६) ऊँचे आकाश मे किरणो से युक्त देवध्वज और (७) अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ सिह। स्वप्न का फल जानकर वसुदेव ने देवकी को बताया कि उसके गर्भ से एक ऐसे पुत्र का जन्म होगा जो महान् प्रतापी, स्वरूपवान, राज्याभिषेक से युक्त, अत्यन्त कान्तिवान, स्थिर प्रकृति और निर्भय तथा वीर होगा।

देवकी के इस सातवें गर्भ से कृष्ण का जन्म हुआ। कृष्ण का जन्म सातवे मास मे ही हो गया था। उत्पन्न होते ही वसुदेव उसे वृन्दावन ले गये तथा अपने विश्वासपात्र गोप नन्द की पत्नी यशोदा के पास उसे छोड आये तथा बदले मे तभी उत्पन्न यशोदा की पुत्री को ले आये और उसे देवकी को दे दिया। कन्या को देखकर कस का क्रोध यद्यपि दूर हो गया था फिर भी उसने हाथ से मसलकर उसकी नाक चपटी कर दी।

बालक कृष्ण सुखपूर्वक बढने लगा। एक दिन कस को किसी निमित्तज्ञानी से यह जानकारी मिली कि उसका शत्रु कही अन्यत्र बढ रहा है। उसने तीन दिन का उपवास कर अपने पूर्व भव के तप से सिद्ध हुई देवियो का आह्वान किया

और उन्हें अपने दुश्मन का पता लगाकर मारने का आदेश दिया । उसमें से एक देवी ने भयकर पक्षी का, दूसरी ने पूतना धाय का, तीसरी ने शकट का, चौथी-पाँचवीं ने यमलार्जुन का तथा छठी ने बैल का रूप धारण कर कृष्ण को मारने का प्रयत्न किया । परन्तु वे सभी बालक कृष्ण द्वारा प्रताड़ित हुई । सातवी देवी ने पाषाणमयी तीव्र वर्षा से कृष्ण को मारना चाहा । तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत के द्वारा समस्त गोकुल की रक्षा की ।

तभी मथुरा मे तीन पदार्थ प्रकट हुए—(१) सिहवाहिनी नागशय्या, (२) अजितजय धनुष तथा (३) पाञ्चजन्य शख । कस को ज्योतिषियो ने बताया कि जो कोई नागशय्या पर चढकर धनुष पर डोरी चढा दे तथा पञ्चजन्य शख को फूंक दे, वही उसका शत्रु है । कस ने इस बात को गुप्त रखकर यह प्रचारित करवाया कि जो भी उक्त कार्य पूरा करेगा उसे कस अपना महान् मित्र समझेगा तथा उसके लिए अलभ्य इष्ट वस्तु भेट करेगा । कस की इस घोषणा से अनेक नृपगण मथुरा आये परन्तु उसमे से कोई भी घोषित कार्य सम्पन्न नही कर पाया । एक दिन कसपत्नी जीवद्यशा का भाई गोकुल आया और वहाँ कृष्ण का अद्भुत पराक्रम देख उसे साथ ले मथुरा पहुंचा । कृष्ण ने स्वाभाविक शय्या के समान ही नागशैय्या पर आरोहण किया, धनुष को प्रत्यञ्चा युक्त किया तथा शख को फूंक दिया । कृष्ण का यह पराक्रम देख उनके बडे भाई बलदेव को कस से आशका हो गयी । अत उन्होने बडी चतुरता से अपने पक्ष के अनेक लोगो को कृष्ण के साथ कर दिया ।

अब कस कृष्ण के विनाश का उपाय करने लगा । गोपो को आज्ञा हुई कि कालियनाग से युक्त ह्रद से कमल लाकर उपस्थित करें । कृष्ण ने कालियनाग का मर्दन किया तथा कमलदलो के साथ गोपो को कस की सेवा मे भेजा । कस ने मल्लयुद्ध के लिए कृष्ण की अगुवाई मे गोपो को आमन्त्रित किया । इस मल्लयुद्ध मे अत्यधिक शौर्य का प्रदर्शन करते हुए कृष्ण ने चाणूर तथा बलराम ने मुष्टिक नामक मल्ल को पछाड दिया । इससे कुपित होकर जब कस तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण की ओर लपका तो कृष्ण ने उसके हाथ से तलवार छीन ली तथा उसे भी पछाडकर मार डाला । तदनन्तर यादवो के परामर्श से कस के पिता राजा उग्रसेन को मथुरा के राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया ।

कस की पत्नी जीवद्यशा ने अपने पिता मगधराज जरासन्ध को, यादवो तथा कृष्ण द्वारा किए गये कस-वध का अत्यधिक विलाप करते हुए विवरण दिया, जिससे क्रोधित होकर जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन के साथ एक बडी सेना भेजकर यादवो को नष्ट करने का आदेश दिया । उसके मारे जाने पर अपने भाई अपराजित को भेजा । वह भी यादवो के हाथ युद्ध मे मारा गया । इससे क्रोधित होकर जरासन्ध ने अपने पक्ष के अनेक राजाओ को एकत्र कर यादवो को दण्डित

करने के लिए स्वयं कूच करने का निश्चय किया, तब अन्धकवंशी तथा भोजकवंशी सभी यादवों के प्रमुख पुरुषो ने मन्त्रणा कर शौरीपुर छोड देने का निश्चय किया। वहाँ से चलकर पश्चिमी समुद्र तट पर उन्होंने द्वारिका पुरी को अपनी राजधानी बनाया। कृष्ण के प्रताप से पश्चिम के अनेक राजा उनके वशवर्ती हो गये। कृष्ण वहाँ अनेक राजकन्याओ से विवाह कर सुखपूर्वक रहने लगे। वहाँ रहते हुए उन्होंने नारद की सूचना पाकर कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की अत्यन्त रूपवती कन्या रुक्मिणी का हरण कर उससे विवाह किया। रुक्मिणी के लिए निश्चित किए गए वर राजा शिशुपाल का भी युद्धभूमि मे हनन किया।

कृष्ण की रानियो मे रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावली, गान्धारी आदि थीं। इन रानियो से उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जिनमे प्रद्युम्न, साम्ब, भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, महासेन, अकम्पन, उदधि, गौतम, प्रसेनजित्, भरत, शख आदि प्रमुख थे। इस प्रकार कृष्ण द्वारिका मे ऋद्धि-सिद्धि से युक्त होकर राज कर रहे थे। तभी एक दिन एक वणिक अपना खरीदा हुआ माल बेचने के उद्देश्य से बहुत-सी अमूल्य मणियाँ लेकर राजा जरासन्ध से मिला। उन मणियो को देखकर जरासन्ध ने उससे पूछा कि ये मणियाँ तुम कहाँ से लाये हो। वणिक ने उत्तर मे जब द्वारकापुरी तथा वहाँ के महान प्रतापी राजा कृष्ण एव यादवो का वर्णन किया तो जरासन्ध अत्यन्त कुपित होकर यादवो तथा कृष्ण को नष्ट करने की योजना बनाने लगा। उसने अजितसेन नामक अपने दूत को द्वारिका भेजकर यादवो को अधीनता स्वीकार करने अथवा युद्धभूमि मे सामना करने का सदेश भेजा। यादवो ने भी जरासन्ध का युद्ध का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और अपनी तैयारी आरम्भ करदी।

कुरुक्षेत्र मे यादवो और जरासन्ध की सेना मे बडा भीषण सग्राम हुआ। दोनो पक्षो से अनेक राजाओ ने अपनी सेनाओ सहित इस युद्ध मे भाग लिया। युद्ध मे कृष्ण द्वारा जरासन्ध का वध हुआ। इस अवसर पर सन्तुष्ट हुए देवो ने घोषणा की कि वसुदेव के पुत्र कृष्ण नौवे वासुदेव है और उन्होने चक्रधारी हो कर द्वेष रखने वाले प्रतिशत्रु जरासन्ध को उसी के चक्र से युद्ध मे मार डाला है।[1] तत्पश्चात् राजाओ ने अतिशय प्रसिद्ध कृष्ण तथा बलदेव को अर्ध भरतक्षेत्र के स्वामित्व पद पर अभिषिक्त किया।[2] अपनी अनेक रानियो से सेवित कृष्ण द्वारकापुरी मे राज्य भोग करते हुए सुखपूर्वक अनेक वर्षों तक जीवित रहे।

एक समय शाम्ब आदि यादव-कुमारो ने अत्यधिक सुरापान से मत्त होकर तपस्वी पाराशर के पुत्र ब्रह्मचारी द्वैपायन को निर्दयता पूर्वक मारा डाला। इससे क्रुद्ध होकर उसने यादवगण सहित द्वारिका को जला देने का निदान किया। द्वारिका अग्नि मे भस्म हो गयी। शक्तिशाली यादव परस्पर युद्ध मे लड मरे। इस विनाश से बचे कृष्ण तथा बलराम दुखी मन पाण्डवो के पास पाण्डु मथुरा की ओर

चले ।[८] मार्ग मे कौशाम्बी वन मे कृष्ण को प्यास लगी । बलदेव पानी लेने गये और कृष्ण पीताम्बर ओढकर सो गये । इसी समय मृग की आशका से जराकुमार द्वारा चलाये गये बाण से कृष्ण का प्राणान्त हो गया। पानी लेकर लौटने पर बलदेव ने मोह-वश कृष्ण को प्रगाढ निद्रा मे सोया जाना । तब बलदेव उन्हे अपने कधे पर लिये छह मास तक घूमते रहे। देवताओ के प्रतिबोध से उनका मोह दूर हुआ और उन्होने कृष्ण का तुगी गिरि पर दाह सस्कार किया। इस घटना से वे ससार से विरक्त हो गये। महान् तप के पश्चात् उन्होने सिद्धत्व प्राप्त किया ।

(ग) जैन कथा अवान्तर प्रसग

जैन कृष्ण कथा के कतिपय अवान्तर प्रसग साहित्य वर्णन की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण व लोकप्रिय रहे हैं। ये प्रसग है—

(१) अरिष्टनेमि-चरित
(२) गजसुकुमाल-चरित
(३) प्रद्युम्न-चरित
(४) पाण्डव-चरित

इन प्रसगो को आधार बनाकर विभिन्न भाषाओ मे अनेक जैन साहित्यिक कृतियो का प्रणयन हुआ है। इन कृतियो मे द्वारिका के शक्तिशाली राजा कृष्ण वासुदेव के वैभव व शक्ति-सामर्थ्य का वर्णन है। प्रसग सक्षेप मे निम्न प्रकार है—

(१) अरिष्टनेमि चरित

कृष्ण के ताऊ महाराजा समुद्रविजय की महारानी शिवादेवी की कुक्षि से श्रावण शुक्ला पचमी को अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। उनका जन्म यादवो की राजधानी शौर्यपुर मे हुआ। जिस समय यादवो ने शौर्यपुर तथा मथुरा से निष्क्रमण कर पश्चिमी समुद्र तट की ओर प्रयाण किया उस समय अरिष्टनेमि की बाल्यावस्था थी। यादवो के द्वारिका नगरी मे बस जाने के बाद बालक अरिष्टनेमि वहाँ सभी परिवार-जन को प्रमुदित करते हुए बडे होने लगे। वे समस्त राज-कुमारो मे सर्वाधिक प्रतिभाशाली, ओजस्वी व अनुपम शक्ति सम्पन्न थे ।

कृष्ण-जरासन्ध युद्ध के समय कुमार अरिष्टनेमि भी यदुसेना मे उपस्थित थे। युद्ध के पश्चात् सभी यादवगण द्वारिकापुरी मे आनन्दोपभोग करते हुए रहने लगे। माता-पिता, कृष्ण तथा सभी प्रमुख यादवो ने अरिष्टनेमि से विवाह करने का अनेक बार अनुरोध किया परन्तु वे बराबर उनके अनुरोध को टालते रहने थे। वे जन्मना विरक्त प्रकृति के थे। कृष्ण ने अपनी रानियो के सहयोग से उन्हे बडी

कठिनाई से विवाह के लिए तैयार किया। उग्रसेन की पुत्री राजीमती से अरिष्टनेमि का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया गया। विवाह के लिए जाते समय बारात के भोज के लिए एकत्रित अनेक पशु पक्षियो को बाडे मे बन्द देखकर तथा यह जानकर कि बारात मे आये लोगो के लिए इनका वध किया जायेगा, नेमिकुमार का जन्मना विरक्त भाव और अधिक दृढ हो गया। उन्होने वही वैवाहिक वस्त्राभूषणो को त्याग कर वैराग्य का मार्ग अगीकार करने का निश्चय कर लिया। मगल महोत्सव मे आयी इस बाधा ने वर तथा वधू—दोनो पक्षो के लोगो को विकल कर दिया। नेमिकुमार को हर सम्भव तरीके से समझाने का सभी ने प्रयत्न किया, परन्तु कुमार अपने निश्चय पर दृढ रहे। वे वहाँ से तुरन्त लौट चले। उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा कठोर साधना के बाद कैवल्य प्राप्त किया। अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के आलोक मे ससार को आलोकित करने के लिए अर्हत् अरिष्टनेमि विहार करने लगे। अनेक लोगो ने उनके पास दीक्षा ली। राजीमती ने भी उन्ही के पथ का अनुकरण किया। उनका विहार द्वारिका मे प्राय होता रहता था। इस अवसर पर कृष्ण सदल-बल उनकी उपदेश सभाओ मे उपस्थित रहा करते थे। कृष्ण की रानियो, पुत्रो, अन्य पारिवारिक व्यक्तियो तथा द्वारिका के अनेक नर-नारियो ने इन अवसरो पर अर्हत् अरिष्टनेमि के प्रबोधन से वैराग्य का जीवन अगीकार किया। अनेक वर्षों तक ससार के लोगो को मुक्ति का मार्ग दिखानेवाले अर्हत् अरिष्टनेमि ने आषाढ शुक्ला अष्टमी को मुक्ति प्राप्त की।

(२) **गजसुकुमाल-चरित**

भद्दिलपुर की सुलसा गाथापत्नी के, समान स्वरूपवाले छह पुत्र अर्हत् अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हुए। अरिष्टनेमि के द्वारिका विहार के समय ये छह भाई दो-दो के सघ मे तीन बार कृष्ण की माता देवकी के महल मे भिक्षार्थ पहुँचे। इनको देखकर देवकी को अपने कृष्ण से पूर्व उत्पन्न छहो पुत्रो की बात याद हो आयी। वे भी आज ऐसे ही होते—इस विचार ने उसे दुखी कर दिया। बाद मे यह बात जानकर कि ये वास्तव म उसी से उत्पन्न पुत्र है जिन्हे कि जन्म लेते ही सुलसा के पुत्रो से बदल दिया गया था[१], देवकी अत्यन्त करुणार्द्र हो गयी। वह चिन्ता-मग्न हो गयी कि सात पुत्रो की जननी होकर भी मै एक का भी बालमुख न देख सकी। इस प्रकार के विचारो मे वह उदास रहने लगी। कृष्ण ने माता के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए तप किया तथा हरिणैगमेषी देव से अपने लिए लघु भ्राता की याचना की। यथा समय देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम गजसुकुमाल रखा गया।

गजसुकुमाल जब युवावस्था को प्राप्त हुए तो कृष्ण वासुदेव ने उनका विवाह सम्बन्ध द्वारिका के सोमिल नामक ब्राह्मण की रूपवती कन्या सोमा से निश्चित

कर दिया। उन्ही दिनो अर्हत् अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन हुआ। उनके उपदेश श्रवण कर गजसुकुमाल ने प्रव्रजित होने का निर्णय कर लिया। देवकी, कृष्ण तथा अन्य परिवार-जन ने उन्हे अनेक तरह समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उन्होने अर्हत् अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण की और उनकी आज्ञा लेकर महाकाल श्मशान मे एक रात्रि के लिए ध्यानरूढ हो गये।

सन्ध्या वेला मे यज्ञ की समिधा, कुश, पत्ते आदि लेकर लौटते हुए सोमिल की दृष्टि गजसुकुमाल पर पडी। उसे मुण्डित हुए देखकर वह क्रोधित हुआ। "इसने मेरी निर्दोष पुत्री के जीवन से खिलवाड की है, मैं भी इससे बदला लूँगा।" यह सोच कर उसने मुनिराज के मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बाँधकर पास की एक जलती चिता मे से लाल-लाल जलते हुए अगारे उनके मस्तक पर रख दिए। मुनि ने शान्त मन व निर्विकार भाव से उस भयकर वेदना को सहन करते हुए सिद्धत्व प्राप्त किया।

(३) प्रद्युम्न-चरित

प्रद्युम्न कुमार कृष्ण की रानी रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र था। जन्म की छठी रात्रि मे धूमकेतु नामक राक्षस ने बालक प्रद्युम्न का अपहरण किया और उसे एक शिला के नीचे दबा कर भाग गया। उसी समय कालसवर नामक विद्याधर ने बालक प्रद्युम्न को उठा लिया। उसकी पत्नी कचनमाला ने उसका पालन-पोषण किया। युवा होने पर प्रद्युम्न अतिशय रूपवान, बलशाली व प्रतिभावान बना। उसने कालसवर के शत्रु सिहरथ को पराजित किया। कालसवर के अन्य पुत्र उससे जलने लगे व उसे मारने का उपाय करने लगे। परन्तु प्रद्युम्न ने सभी विपत्तियों का निर्भय होकर सामना किया तथा अनेक विद्याएँ सीख ली। उसने कचनमाला से भी तीन विद्याएँ ग्रहण कर ली। कचनमाला उसमे अनुरक्त हो गयी। परन्तु उसकी कामचेष्टाओ का प्रद्युम्न पर कोई प्रभाव नही पडा। उलटा उसने उसे समझाने का प्रयत्न किया। इससे कुपित हो कचनमाला ने कालसवर को प्रद्युम्न के विरुद्ध उकसाया। कालसवर और प्रद्युम्न के बीच भयकर युद्ध हुआ। तभी नारद ने आकर बीच बचाव किया। वास्तविक तथ्य जानकर प्रद्युम्न द्वारिका लौटे।

द्वारिका आकर अपनी विमाता सत्यभामा व उसके पुत्र भानुकुमार को अपनी विद्याओ से परेशान किया। ब्रह्मचारी का वेश बनाकर अपनी माता रुक्मिणी के पास गये। मायामयी रुक्मिणी बनाकर उसे कृष्ण की सभा के आगे से खींचते हुए ले जाकर कृष्ण को ललकारा। कृष्ण और प्रद्युम्न मे युद्ध हुआ। नारद ने आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। सभी बडे प्रसन्न हुए। नगर मे उत्सव मनाया गया।

प्रद्युम्न ने लम्बी अवधि तक राजसुख भोगकर अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली तथा निर्वाण प्राप्त किया।

(४) पाण्डव-चरित

पाण्डु हस्तिनापुर के राजा थे। कृष्ण वासुदेव की बुआओ--कुन्ती तथा माद्री का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ था। राजा पाण्डु के पाँच पुत्र थे जो कि पाण्डव कहलाये। इनके नाम थे क्रमश युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव।

एक समय कापिल्यपुर नगर के राजा द्रुपद ने अपनी सुन्दर पुत्री द्रौपदी के लिए स्वयवर का आयोजन किया। इस स्वयवर के लिए जो निमन्त्रण भेजे गये थे उनमे सर्वप्रथम निमन्त्रण कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा गया। अन्य जिन राजाओ को निमन्त्रित किया गया उनमे प्रमुख थे--हस्तिनापुर के राजा पाण्डु, अगदेश के अधिपति राजा कर्ण, नन्दिदेश के अधिपति शैल्यराज, शुक्तिमती नगरी मे दमघोष के पुत्र राजा शिशुपाल, हस्तशीर्ष नगर के राजा दमवन्त, राजगृह मे जरासन्ध के पुत्र राजा सहदेव, कौडिल्य नगर मे भीष्मक के पुत्र राजा रुक्मि, मथुरा के राजा धर तथा विराट नगर के राजा कीचक। इन सभी राजाओ मे कृष्ण वासुदेव प्रमुख थे।[१०]

स्वयवर मे द्रौपदी ने पाण्डु-पुत्रो का वरण किया। कालान्तर मे एक बार नारद द्रौपदी के राजमहलो मे गये। उस समय द्रौपदी ने नारद को कलहप्रिय जानते हुए उनके प्रति सम्मान प्रकट नही किया। इससे नारद ने अपने को अपमानित समझा। उन्होने द्रौपदी के घमण्ड को चूर करने तथा उसका अप्रिय करने की योजना बनायी। एक बार वह अमरकका नगरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ गये। वहाँ उन्होने द्रौपदी के रूप सौन्दर्य का बढा-चढा कर वर्णन किया, और उस विलासी राजा को द्रौपदी का सुसुप्त अवस्था मे राजमहलो से अपहरण करने को प्रेरित किया। नारद की सूचना के अनुसार पद्मनाभ ने द्रौपदी का सुसुप्त अवस्था मे अपहरण करवा लिया। राजा पाण्डु अनेक प्रयत्नो के बाद भी उसका पता नही लगा सके। तब उन्होने कुन्ती को कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा। कृष्ण वासुदेव ने भी द्रौपदी का पता लगवाने का बहुत प्रयत्न किया। अन्तत नारद की ही सूचना के आधार पर उन्हे द्रौपदी की जानकारी मिली।

कृष्ण वासुदेव पाण्डवो के साथ अमरकका गये। उन्होने युद्ध मे राजा पद्मनाभ को पराजित किया तथा द्रौपदी को लौटाकर लाये। मार्ग मे गगा को पार करते समय पाण्डुओ ने नौका को इसलिए छिपा दिया ताकि नदी पार करने मे वे कृष्ण के पराक्रम व सामर्थ्य का परीक्षण कर सकें। पाण्डवो के इस कृत्य से कृष्ण कुपित हो गये। उन्होने लौह-मुग्दर से उनके रथो को चूर्ण कर दिया तथा देश निर्वासन की आज्ञा दी। दु खी पाण्डव हस्तिनापुर पहुँचे। यह

समाचार जानकर राजा पाण्डु ने कुन्ती को कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा। कृष्ण की आज्ञा से पाण्डवो ने दक्षिणी समुद्रतट पर पाण्डु मथुरा नाम की नगरी बसायी तथा शेष जीवन वहाँ निवास किया। द्वारिका-विनाश तथा कृष्ण की कालप्राप्ति के समाचार सुनकर पाण्डवो को ससार से विरक्ति हो गयी। उन्होने नेमिनाथ के पास वैराग्य की दीक्षा ली और आजीव तप किया।

आगमो मे पाण्डवो से सम्बन्धित इतना ही वृतान्त उपलब्ध है। परन्तु ई० सन् की १३ वी १४वी शती के पश्चात् कतिपय जैन लेखको ने पाण्डवपुराण तथा पाण्डवचरित शीर्षक से ग्रन्थ लिखे है। इन ग्रन्थकारो ने महाभारत मे उपलब्ध पाण्डवो की कथा तथा पाण्डवो से सम्बन्धित जैन परम्परागत प्रसगो को मिलाकर पाण्डवचरित प्रस्तुत किया। इस प्रकार के ग्रन्थ हैं—पाण्डवपुराण (शुभचन्द-सस्कृत), पाण्डवपुराण (यशकीर्ति-अपभ्र श), पचपाण्डव चरित, रास-शालिभद्र, (आदिकालिक हिन्दी), पाण्डवपुराण (बुलाकीदास, हिन्दी) आदि।

(घ) जैन कृष्णकथा निष्कर्ष

जैन कृष्णकथा के कतिपय निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं—

(१) वृष्णि वशी यादव, जिनमे कृष्ण का जन्म हुआ, मूलत सोरियपुर[11]—मथुरा के भू भाग (पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा-मथुरा जिलो का भूभाग) पर निवास करते थे। कृष्ण के पिता वसुदेव यादवो के अन्धकवृष्णि परिवार से थे तथा माता देवकी यादवो के भोजकवृष्णि परिवार की थी। देवकी मथुरा के राजा कस की चचेरी बहिन थी।

(२) सोरियपुर मे अन्धकवृष्णि परिवार के दसो भाई दशार्ह राजा की पदवी से विभूषित थे। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि दसो मिलकर शासन कार्य चलाते थे। अत एक प्रकार का परिवारिक गणतन्त्र सोरियपुर मे प्रचलित था। दूसरी ओर मथुरा के भोजकवृष्णियो मे उग्रसेन के पुत्र कस ने अपना निरकुश शासन स्थापित कर लिया था जिसकी प्रेरणा सम्भवत उसे अपने श्वसुर व राजगृह के निरकुश अधिपति जरासन्ध से मिली होगी।

(३) कृष्ण द्वारा कस के वध से जरासन्ध व वृष्णिवशी यादवो मे परस्पर सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। जरासन्ध की शक्ति के सामने अपने को असमर्थ पाकर इन यादवो ने अपना परिवारिक भू-भाग छोडकर पश्चिम की ओर पलायन किया और अन्त मे समुद्र किनारे पहुँच कर द्वारिका मे निवास किया।

(४) द्वारिका मे रहते हुए कृष्ण के नेतृत्व मे यादवो ने महान् शक्ति व वैभव अर्जित किया। जरासन्ध को जब यादवो तथा कृष्ण की जानकारी मिली तो उसने उन्हे अपना आधिपत्य स्वीकार करने अथवा युद्धभूमि मे सामना करने का सन्देश

भेजा। अन्तत कृष्ण के नेतृत्व मे यादवो और जरासन्ध की सेना के बीच सघर्ष हुआ। कृष्ण ने जरासन्ध को मार डाला। यादव विजयी हुए तथा कृष्ण भारतभूमि के राजपुरुषो मे अग्रणी रूप मे प्रतिष्ठित हुए। जैन-कथा के अनुसार इस युद्ध के फलस्वरूप कृष्ण आधे भरतक्षेत्र के अधिपति अभिषिक्त हुए और उन्हे राजा वासुदेव के रूप मे मान्यता मिली। वासुदेव के रूप मे कृष्ण की वीरता व शक्ति-सम्पन्नता को जैन साहित्य मे महत्ता मिली है। एक प्रकार से कृष्ण वासुदेव के वीरत्व की पूजा को जैन साहित्य ने मान्यता दी है तथा उन्हे अपने पौराणिक चरित नायको मे सम्मिलित किया है।

(५) कृष्ण वासुदेव का उत्तरकालीन जीवन अरिष्टनेमि के त्याग से प्रभावित रहा। अरिष्टनेमि उन्ही के कुल के राजकुमार थे। महान् त्याग और तप के पश्चात् ज्ञान प्राप्त कर के वे अर्हत् प्रसिद्ध हुए। उनके उपदेशो मे प्रभावित होकर अनेक यदुवशी स्त्री-पुरुषो एव द्वारिका के अन्य निवासियो ने सन्यास धर्म अगीकृत किया। स्वय कृष्ण उनकी धर्म चर्चा मे रुचिपूर्वक भाग लेते थे। इस प्रकार जैन कथानायक कृष्ण वासुदेव तीर्थंकर अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धावनत बताये गये हैं।

(६) जैन परम्परा के कृष्णचरित मे कृष्ण के गोपीजनप्रिय एव राधा-प्रिय के सन्दर्भों का सर्वथा अभाव है। राधा का नाम भी जैन परम्परागत कृष्ण-चरित वर्णन मे कही देखने को नही मिलता। जैन कथानायक कृष्ण मे शृगारी नायक के स्वरूप का अभाव है। अपेक्षाकृत उनके वीर श्रेष्ठ शलाकापुरुष वासुदेव के स्वरूप का ही सर्वत्र वर्णन हुआ है।

(७) जैनागमो तथा प्राचीन जैन पुराण-ग्रन्थो मे कृष्ण वासुदेव का पाण्डवो से कुपित होकर उन्हे दक्षिणी समुद्र तट पर पाण्डु मथुरा नगरी बसाने का तथा वहाँ निवास करने के आदेश का भी प्रसागिक वर्णन है।[10] कौरव-पाण्डव के मध्य हुए महाभारत युद्ध के सम्बन्ध मे भी ये कृतियाँ मौन है। गीता के उपदेश के बारे मे भी कोई जानकारी नही मिलती।

(८) जैन कथा मे यादवो तथा द्वारिका का विनाश, जरा नामक शिकारी के बाण लगने से कृष्ण वासुदेव का परमधाम-गमन किंचित् हेर-फेर के साथ लगभग उसी रूप मे वर्णित है जिस प्रकार कि महाभारत कथा तथा बौद्ध-घट जातक की कथा मे वर्णित है।[11]

तीनो परम्पराओ की कथा मे कृष्ण के परमधाम गमन के प्रसग के अतिरिक्त कृष्ण द्वारा कस का वध, कृष्ण का अपर नाम वासुदेव होना तथा कृष्ण की अद्वितीय वीरता, पराक्रम व शक्तिसामर्थ्य का प्रसग वर्णन लगभग एक समान है। तीनो कथाओ के ये समान तथ्य कृष्णचरित की ऐतिहासिकता के सन्धान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। जैन कथा के समान बौद्ध कथा मे भी महाभारत युद्ध के प्रसग का तथा कृष्ण के गोपी-प्रेम और राधा-प्रेम के सन्दर्भों का अभाव है।

कृष्ण का स्वरूप-वर्णन

जैन-साहित्य मे कृष्ण-स्वरूप वर्णन · दो आयाम

जैन-साहित्य मे कृष्ण-स्वरूप वर्णन के दो मुख्य आयाम हैं। प्रथम, महान वीर एव शक्तिसम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष। द्वितीय, आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष। समस्त जैन साहित्य मे परम्परागत रूप से कृष्ण-स्वरूप वर्णन इन्ही दो परिधियो की सीमा मे आबद्ध है। प्रथम पक्ष के उद्घाटन में जैन-साहित्यकार ने कृष्ण के बाल्यकाल के वीरतापूर्ण कृत्यो का, उनके द्वारा चाणूर, कस तथा जरासन्ध आदि के वध का तथा द्वारिका के वैभव-वर्णन के साथ-साथ वहाँ के अधिपति श्रेष्ठ वासुदेव राजा के रूप मे महिमामय स्वरूप का चित्रण किया है। दूसरे पक्ष का अर्थात् उनकी आध्यात्मिक भावना के प्रकटीकरण का एक मात्र आधार है—तीर्थंकर अरिष्टनेमि का द्वारिका आना, कृष्ण को उनका सान्निध्य प्राप्त होना तथा उनकी धर्मसभाओ (समवसरण) मे उपस्थित होकर अपनी आध्यात्मिक पिपासा शान्त करना। कृष्णचरित सम्बन्धी जो जैन कृतियाँ विभिन्न भाषाओ मे उपलब्ध है, उनमे परम्परागतरूप से कृष्ण के स्वरूप वर्णन की ये दो सीमा-रेखाएँ है। इसका परिचय हम यहाँ विभिन्न कृतियो से उदाहरण देकर प्रस्तुत कर रहे है।

महान वीर व शक्ति-सम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष

(1) आगमिक एव पौराणिक कृतियो मे स्वरूप-वर्णन

कृष्ण अपने समय के वासुदेव शलाकापुरुष थे। इस रूप मे वे महान शक्तिशाली अर्द्ध चक्रवर्ती राजा थे। उनका द्वारिका सहित सम्पूर्ण दक्षिण भरतक्षेत्र पर प्रभाव तथा प्रभुत्व था। द्वारिका की भव्यता, वैभव और उसके महान् महिमावान राजपुरुष कृष्ण का परिचय अन्तकृद्दशांग में इन शब्दो में दिया गया है—[1]

"तेण कालेण तेण समएण बारवई णाम नयरी होत्था, दुवालस-जोयणायामा णाव जोयण विच्छिण्णा धणवइमइ निम्मिया चामी करपागारा नाना मणि-पचवण्णक विसीसग परिमडिया सुरम्मा अलकापुरिसकासा पमुइय पक्कीलिया पच्चक्ख देवलोगभूया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसेण बारबईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए सत्थण रेवया नाम पवए होत्था । तस्थ णं रेवयए पव्वए नदणवणे नाम उज्जाणे होत्था । तत्थण बारबईए णयरीए कण्हे णाम वासुदेवे राया परिवसइ । महमा राय वण्ण ओ ।

से ण तत्थ ममुद्दविजयपामोक्खाण दसण्ह दसाराण बलदेव पामोक्खाण पचण्ह महावीराण पज्जुण्णपामोक्खाण अद्धुढाण कुमार कोडीण, सबपामोक्खाण सट्ठीए दुदत माहस्सीण महसेण पामोक्खाण छप्पणाए बलवग्ग साहस्सीण वीरसेण पामोक्खाण एगवीसाए वीर साहस्सीण उग्गसेण पामोक्खाण सोलसण्ह राय साहस्सीण, रूप्पिणी पामोक्खाण सोलसण्ह देविसाहस्सीण अणगसेणा पामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण अण्णेसि च बहूण ईसर जाव सत्थवाहाण बारवईए नयरीए अद्धमरहस्स य समत्तस्स आहेवच्च जाव विहरइ ।"

अर्थात् उन (तीर्थंकर अरिष्टनेमि) के समय मे द्वारिका नाम की नगरी थी जो बारह योजन लम्बी तथा नौ योजन चौडी थी । इसका निर्माण स्वय धनपति कुबेर ने अपने बुद्धिकौशल से किया था । यह स्वर्ण परकोटे तथा नाना प्रकार की मणियो से जडित कगूरो से सुसज्जित थी । यह देवलोक स्वरूप थी तथा बडी ही मनभावन थी । यहाँ के भवनो की दीवारो पर अनेक प्रकार के पशु-पक्षियो के चित्र अकित थे । इस नगर के बाहर उत्तरी-पूर्वी दिशा मे रैवतक नामक पर्वत था । उस पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था। ऐसी इस श्रेष्ठ नगरी मे महान मर्यादावान श्रीकृष्ण वासुदेव का राज्य था ।

समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह, बलदेव प्रमुख पाँच महावीर, प्रद्युम्न प्रमुख साढे तीन करोड कुमारगण, साम्ब प्रमुख साठ हजार शूरवीर, महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवीर, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार अधीनस्थ नृपगण, रुक्मिणी (रुप्पिणी) प्रमुख सोलह हजार रानियाँ, अनगसेन प्रमुख अनेक गणिकाएँ, ऐश्वर्यवान नागरिक, नगररक्षक सीमात राजागण, मुखिया, सेठ, सार्थवाह आदि से युक्त उस द्वारिका नगरी महित आधे भरतक्षेत्र मे वे (कृष्ण वासुदेव) सम्पूर्ण राज्य करते थे ।

द्वारिका नगरी के वैभव-वर्णन तथा यादवो की शक्ति के इस वर्णन द्वारा कृष्ण वासुदेव की शक्ति, महत्ता तथा समृद्धि का ही प्रकारान्तर से वर्णन है ।

एक अन्य आगमिक कृति ज्ञातृधर्मकथा मे द्रौपदी-स्वयवर का वर्णन है । इस वर्णन मे भारतभूमि के तत्कालीन राजपुरुषो का नामोल्लेख है । ये नृपति थे[१]—हस्तिनापुर के राजा पाण्डु (पाण्डवो के पिता), अगदेश के अधिपति कर्ण, नन्दिदेश के अधिपति राजा शैल्य, शुक्तिमती नगरी के दमघोष के पुत्र राजा शिशुपाल, हस्तिशीर्ष नगर के राजा दमयन्त, मथुरा के राजा धर, राजगृह मे जरासन्घ के पुत्र सहदेव, कौडिल्य नगर मे भीष्मक के पुत्र रुक्मि तथा विराट

नगर के कीचक । इन सभी राजाओ मे वासुदेव कृष्ण को प्रमुख कहा गया है। यथा—

वासुदेव पामुक्खाण बहुण रायसहस्साण आवसि करेह तेवि करेत्ता पच्च-यिणाति ।[3]

द्रौपदी-स्वयवर का निमन्त्रण उक्त सभी राजाओ के पास भेजा गया था परन्तु इनमे भी प्रथम निमन्त्रण कृष्ण वासुदेव के पास भेजा गया । इसी प्रकार राजाओ के आगमन पर प्रथम स्वागत भी कृष्ण वासुदेव का ही किया गया । इस उल्लेख के आधार पर कृष्ण को भारतभूमि के सभी राजाओ मे श्रेष्ठतम व प्रथम पूजनीय के रूप मे वर्णित किया गया है ।

विभिन्न आगमिक कृतियो मे कृष्ण के वासुदेव राजा के इसी रूप का वर्णन हुआ है । जिनसेन कृत हरिवशपुराण (सस्कृत) मे कृष्ण के बाल्यकाल की परा-क्रमपूर्ण क्रीडाओ का भी कवि ने वर्णन किया है । चाणूर तथा कसवध का वर्णन करते हुए कवि ने कृष्ण की अद्वितीय वीरता तथा पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है—

हरिरपि हरिशक्ति शक्तचाणूरक त, द्विगुणितमुरसि स्वे हारिहुकारगर्भ ।
व्यतनुत भुजयन्त्राक्रान्तनीरन्ध्रनिर्यद्बहलरुधिरधारोद्गारमुद्गीर्णजीवम् ।।
दशशतहरिहस्तिप्रोद्बलौ साधिषूभाविति हठहतमल्लौ वीक्ष्य तौ शौरिकृष्णौ ।
प्रचलितवति कसे शातनिस्त्रिकाहस्ते व्यचलदखिलरगाम्बोधिरुत्तुगनाद ।।
अभिपतदरिहस्तात्खगमाक्षिप्य केशेष्वतिहठमतिगृह्याहत्य भूमौ सरोषम् ।
विहितपरुषपादाकर्षणस्त शिलाया तदुचितमिति मत्वास्फाल्य हत्वा जहास ।।[4]

अर्थात् सिह के समान शक्ति के धारक एव हुकार से युक्त कृष्ण ने भी चाणूर मल्ल को, जो उनसे शरीर मे दूना था अपने वक्षस्थल से लगाकर भुजयन्त्र के द्वारा इतने ज़ोर से दबाया कि उससे अत्यधिक रुधिर की धारा बहने लगी और वह निष्प्राण हो गया । कृष्ण और बलभद्र मे एक हजार सिह और हथियो का बल था । इस प्रकार अखाडे मे जब उन्होने दृढपूर्वक कस के दोनो प्रधान मल्लो को मार डाला तो उन्हे देख, कस हाथ मे पैनी तलवार लेकर उनकी ओर चला । उसके चलते ही समस्त अखाडे का जनसमूह समुद्र की तरह जोरदार शब्द करता हुआ उठ खडा हुआ । कृष्ण ने सामने आते हुए शत्रु के हाथ से तलवार छीन ली और मजबूती से उसके बाल पकडकर उसे क्रोधवश पृथ्वी पर पटक दिया । तदनन्तर उसके कठोर पैरो को खीचकर, उसके योग्य यही दण्ड है यह सोचकर, उसे पत्थर पर पछाडकर मार डाला । कस को मार कर कृष्ण हँसने लगे ।

जिनसेन कृत हरिवशपुराण मे वर्णित कृष्णचरित्र के अनुसार कसवध की घटना के पश्चात् कृष्ण तथा यादवगण, राजगृह के अधिपति तथा महान् शक्तिशाली राजा जरासन्ध के कोप-भाजन बन गये। कस जरासन्ध का दामाद था। इस घटना के पश्चात् जरासन्ध के लगातार आक्रमणो से प्रताडित हो यादवगण ने मथुरा प्रदेश छोड कर सुदूर पश्चिम मे द्वारिका मे नये राज्य की स्थापना की। कृष्ण ने वहाँ यादवो के शक्तिशाली राज्य की स्थापना की तथा दक्षिण भारत मे अपने प्रभुत्व व प्रभाव का विस्तार किया। कृष्ण की शक्ति व यादवो के माहात्म्य की बात जरासन्ध को ज्ञात हुई तो वह अत्यन्त कुपित हुआ। आचार्य जिनसेन के शब्दो मे —

यादवानां च माहात्म्य श्रुत्वा राजगृहाधिप.।
वणिज तार्किकेभ्यश्च जात कोपारुणेक्षण ॥[५]

अर्थात् वणिको के माध्यम से जब राजगृह के अधिपति जरासन्ध को यादवो का माहात्म्य ज्ञात हुआ तो अत्यधिक कोप से उसके नेत्र लाल हो गये। उसने अपने मन्त्रियो से कहा —

उपेक्षिता कुतो हेतोर्मन्त्रिणो भणतारय ।
वार्धौ प्रवृद्धसन्तानास्तरगा इव भगुरा॰ ॥
मन्त्रिणो हि प्रभोश्चक्षुर्निर्मल चारचाक्षुष ।
ते कथ स्वामिन स्व च वञ्चयन्ति पुर॰स्थिता ॥
यदि नाम महैश्वर्यप्रमत्तेन मया द्विष.।
नालक्ष्यन्त प्रतन्वाना युष्माभिस्तु कथ तु ते ॥
नोच्छिद्येरन्महोद्योगैर्जातमात्रा यदि द्विष ।
दु खयन्ति दुरान्तास्ते व्याधय॰ कुपिता इव ॥
कस जामातर हत्वा भ्रातर चापराजितम् ।
प्रविष्टा शरण दुष्टा यादवा यादसापतिम् ॥[६]

समुद्र मे बढती हुई तरगो के समान भगुर शत्रु आज तक उपेक्षित कैसे रहे आये ? गुप्तचर रूपी नेत्रो से युक्त राजा के मन्त्री ही निर्मल चक्षु है फिर वे सामने खडे रहकर स्वामी को तथा अपने-आपको धोखा क्यो देते रहे ? यदि महान् ऐश्वर्य मे मत्त रहनेवाले मैंने उन शत्रुओ को नही देखा तो वे आप लोगो से भी अदृष्ट कैसे रह गये ? आप लोगो ने उन्हे क्यो नही देखा ? यदि शत्रु उत्पन्न होते ही महान प्रयत्न पूर्वक नष्ट नही किये तो वे कोप को प्राप्त हुई बीमारियों के समान दु॰ख देते है। ये दुष्ट यादव मेरे जामाता कस तथा भाई अपराजित को मारकर समुद्र की शरण मे प्रविष्ट हुए हैं।

इसके पश्चात् जरासन्ध ने कृष्ण तथा यादवो को नष्ट करने के लिए अपनी सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी तथा दूत भेजकर यादवो को आधिपत्य स्वीकार कर लेने का सदेश भेजा—

सापराधतया यूय यद्यप्युद्भतभीतय ।
दुर्गं श्रितास्तथाप्यस्मन्नभय नमतैत्य माम् ॥[७]

"अपराधी होने के कारण तुमने मुझ से भयभीत होकर दुर्ग का आश्रय लिया है तथापि तुम लोग मुझे आकर नमस्कार करो तो तुम्हे मुझसे भयभीत होने का कोई कारण नही है।"

इस प्रकार जैन स्रोतो मे कृष्ण और जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता एक-दूसरे को आधिपत्य मे करने की है। जिस तरह जरासन्ध ने उक्त सदेश यादवो के पास भेजा लगभग ऐसी ही बात कृष्ण युद्धभूमि मे जरासन्ध से कहते हैं। आचार्य जिनसेन के अनुसार—

इत्युक्तस्त प्रति प्राह प्रकृत्या प्रश्रयी हरि ।
चक्रवर्त्यहमुद्भूत शासने मम तिष्ठ भो ॥
अपकारे प्रवृत्तस्त्वमस्माक यद्यपि स्फुटम् ।
तथापि मृष्यतेऽस्माभिर्नतिमात्रप्रसाविभि ॥[८]

स्वभाव से विनम्र कृष्ण ने जरासन्ध से कहा—"मैं चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका हूँ इसलिए आज से मेरे शासन मे रहिए। यद्यपि यह स्पस्ट है कि तुम हमारा अपकार करने मे प्रवृत्त हो तथापि हम नमस्कार मात्र से प्रसन्न हो तुम्हारे अपकार क्षमा किये देते है।

समान शक्तिशाली व बलशाली इन दोनो शलाकापुरुषो का एक-दूसरे के आधिपत्य मे रह सकना हो ही नही सकता था। फलत युद्ध हुआ और जरासन्ध का कृष्ण के हाथो वध हुआ—

इत्युक्ते कुपितश्चक्री चक्र प्रभ्राम्य सोऽमुचत् ।
भूभृतस्तेन गत्वार वक्षोभित्तिरभिद्यत ॥[९]

चक्रवर्ती कृष्ण ने कुपित होकर अपना चक्र (एक अस्त्र) छोडा। उसने शीघ्र जाकर जरासन्ध के वक्ष स्थल रूपी भित्ति को भेद दिया।

जरासन्ध-वध के साथ ही कृष्ण को अर्ध-भरतक्षेत्र का स्वामी स्वीकार कर लिया गया—

अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टमम्बरे ।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दन ॥[१०]

अभिषिक्तो तत. सर्वैभूतैर्भूचरखेचरै ।
भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ ।।[11]

इस समस्त वर्णनक्रम मे शलाकापुरुष वासुदेव कृष्ण की वीरता, तेजस्विता, अप्रतिम शक्ति-सम्पन्नता आदि का ही वर्णन है ।

(ii) हिन्दी कृतियो मे स्वरूप वर्णन

हिन्दी भाषा मे लिखित जैन काव्य-कृतियो मे भी कृष्ण का वीर, पराक्रमी तथा शक्तिशाली राजा के स्वरूप का विभिन्न प्रकार से वर्णन है—

कृष्ण का अद्वितीय पराक्रम बाल्यावस्था से ही प्रकट होने लगा था। इस पराक्रम को प्रकट करने के लिए हिन्दी कवियो ने कस द्वारा पूर्व जन्म मे सिद्ध की हुई देवियो को आज्ञा देकर, कृष्ण को खोजकर उन्हे मारने के प्रयत्नो का वर्णन किया है। इस वर्णन-क्रम मे पूतना के पराक्रम तथा गोवर्धन धारण की घटना का जैन कवियो ने उल्लेख किया है। जैन कवि ने पूतना-वध नही दिखाया है। इसके स्थान पर पूतना का रोते-चिल्लाते हुए भाग जाने का मात्र वर्णन है। कवि नेमिचन्द्र के शब्दो मे—

रूप कियो इक धाय को, विष आचल दिया जाय ।
आंचल खैंच्या अति घणा, देवा पुकार भजि जाय ।।[12]

पूतना के इस प्रयत्न के बाद देवियो ने बालक कृष्ण को मारने के अन्य भी प्रयत्न किये पर वे सफल नही हो सकी। अन्त मे सबने मिलकर प्रलयकारी वर्षा द्वारा कृष्ण सहित समस्त गोकुल को ही नष्ट कर देने का प्रयत्न किया। कृष्ण ने गोकुल की रक्षा करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत को ही इस भाँति उठा लिया जैसे कि वीर योद्धा शत्रु सहार हेतु अपना धनुष उठाता है—

देवा बन मे जाय, मेघ तनी वरषा करी।
गोवर्द्धन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाव सों ।।[13]

कवि नेमिचन्द्र ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

केसो मन में चिन्तवे, परवत गोरधन लीयो उठाय ।
चिटी आंगुली उपरे, तलिउ या सब गोपी गाय ।।[14]

कस की देवियाँ जब बालक कृष्ण का अनिष्ट करने मे सफल नही हो सकी तथा वे दिनोदिन कुशलतापूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने गये तो कस चिन्तित रहने लगा। अन्तत उसने मल्लयुद्ध के आयोजन के बहाने से कृष्ण को मथुरा बुलवाकर मार डालने की योजना बनायी । कृष्ण-बलराम के आगमन पर एक मदमस्त हाथी उन पर छोड दिया गया ताकि वह उन्हे रौंद डाले, परन्तु वीर बालक

कृष्ण ने उस हाथी का दाँत तोड लिया और उसी से उसे मारकर भगा दिया। पुन मल्लशाला मे अपने से बहुत बडे तथा भारी चाणूर मल्ल को मार डाला। अन्तत क्रोधित हुए कस को जब मारडालने की मुद्रा मे अपनी ओर आते देखा तो अत्यधिक साहसपूर्वक अपने अद्वितीय पराक्रम के बल पर उसे भी देखते-देखते ही यमलोक पहुँचा दिया। वीर बालक कृष्ण के इस अद्वितीय शौर्य का जैन कवियो ने बडे उत्साह से वर्णन किया है। कतिपय उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

कवि खुशालचन्द ने अपने 'उत्तरपुराण' मे हाथी छोडने से लेकर कस-वध तक का वर्णन इस प्रकार किया है—

> जाके सम्मुख दौड्यो जाय। दत उपारि लयो उमगाय।
> ताही बल थकी गज मारि। हस्ति भागि चली पुर मझारि॥
> ताही श्रोंति शोभित हरी भए। कस आप मल्ल मुति लखि लए।
> रुधिर प्रवाह थकी विपरीत। देख क्रोध धरि करि तजि नीति॥
> आप मल्ल के आये सोय। तब हरि बेग अरि निज जोय।
> चरन पकरि तब लये उठाय। पखि सन उन ताहि फिराय॥

दोहा—

> फेरि धरणि पटक्यो तणे, कृष्ण कोप उपजाय।
> मानो यमराजा तणी, सो ले भेंट चढ़ाय।[15]

कृष्ण द्वारा चाणूरवध का वर्णन कवि शालिवाहन निम्न शब्दो मे करते है—

> चण्डूर मल्ल उठ्यो काल समान,
> वज्रमुष्टि दैयत समान॥
> जानि कृष्ण दोनो कर गहे,
> फेरि पाइ धरती पर बहे॥[16]

कवि नेमिचन्द्र के शब्दो मे—

> कान्ह गयो जब चौक मे, चाण्डूर आयो तिहि बार।
> पकडि पछाड्यो आवतो, चाण्डूर पहुँच्यो यम द्वार॥
> कस कोप करि उठ्यौ, पहुँच्यौ आवुराय पै।
> एक पलक मे मारियो, जम-घरि पहुच्यौ जाय तै॥
> जै जै कार सबद हुआ बाजा बाज्या सार।
> कस मारि धीस्यौ तबै पलक न लाई बार॥[17]

ऐसा पराक्रम व साहस सामान्य व्यक्ति मे होना सम्भव नहीं है। जो युवा साधारण गोप-जनो के बीच रहकर पला हो, फिर भी इतना असाधारण साहसी हो कि किसी राजा को उसी के घर मे, उसके अनेक दरबारियो व प्रजाजन के समक्ष पटक कर मार डाले, विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न होना चाहिए। जैन साहित्य मे वर्णित युवा कृष्ण का यह विशिष्ट व्यक्तित्व उनके भावी वासुदेवत्व स्वरूप का ही सकेत है। हिन्दी जैन साहित्य मे वासुदेव का पर्यायवाची शब्द नारायण भी प्रयुक्त हुआ है। कवि सोमसुन्दर सन् १४२६ मे लिखित अपनी रचना 'रगसागर नेमि फागु' मे कस की मल्लशाला मे प्रदर्शित युवक कृष्ण के इस पराक्रम का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि यह पराक्रम सामान्य व्यक्ति मे नही हो सकता, यह वीर तो नारायण (वासुदेव) है, जिसने कस का विध्वस किया है। कवि के शब्दो मे—

अवतारीआ इणि अवसररि मथुरा पुरिस रयण नव नेहरे,
सुख लालित लीला प्रीति अति बलदेव वासुदेव बेहुर।
वसुदेव रोहिणी देवकी नवन चदन अजन वान रे
वृदावनि यमुना जलि निरमलि रमति सांई गोई गान रे ॥
रमति करता रगि चडइ गोवर्द्धन शृगि
गूजरि गोवालणिए गाई गोपी सिउ मिलोए ॥
कालीनाग जल अतरालि कोमल कमलिनी नाल,
नाखिउ नारायणिए रमलि परायणीए।
कस मल्ला खाडइ वीर पहुता साहस धीर,
बेहु बाइ वाकरीए बलवता बांहि करीए,
बलभद्र बलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार,
कृष्णि बल पूरिउए चाण्डूर चूरिउ ए,
मौष्टिक चाणूर चूरिए देखीय अठिउ कस,
नव बलवन्त नारायणि तास कीधउ ध्वस।[१८]

वासुदेव कृष्ण का यह अद्वितीय पराक्रम तथा महान् वीरत्व उनके जीवन की बाद की अनेक घटनाओ मे साकार होता गया है, यद्यपि उनके पूर्ण वासुदेव-रूप की प्रतिष्ठा जरासन्ध-वध के साथ हुई है। कस-वध के पश्चात् नीतिकुशल कृष्ण सतत यादवो को लेकर पश्चिमी समुद्रतट की ओर प्रयाण करते हैं तथा वहाँ द्वारिका को राजधानी बनाकर नये राज्य की स्थापना करते हैं। तत्कालीन परिस्थितियो मे मगध के शक्तिशाली नरेश जरासन्ध से निर्णायक युद्ध को टालने का यह बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय था। द्वारिका मे रहकर कृष्ण के नेतृत्व मे यादवगण शक्ति सचयन करने है तथा समस्त दक्षिण भारत पर अपने प्रभाव का

विस्तार करते हैं।

द्वारिका मे राज्य-स्थापना तथा शक्ति-सचयन के पश्चात् कृष्णचरित की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप मे रुक्मिणीहरण तथा इस अवसर पर हुए युद्ध मे कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन हिन्दी जैन कृतियो मे उत्साहपूर्वक हुआ है। इस घटना के वर्णन मे कृष्ण के पराक्रम तथा वीर-स्वरूप का जैन साहित्यकारो ने जो वर्णन किया है, उसमे भी बार-बार वे यह उल्लेख करना नही भूले है कि कृष्ण नारायण (वासुदेव) हैं।

अपने 'प्रद्युम्न चरित' काव्य मे कवि सधारू ने नारद के मुख से रुक्मिणी के समक्ष कृष्ण के जो गुण-वर्णन कराये है उसमे कृष्ण मे विद्यमान उन लक्षणो का भी उल्लेख किया है जो वासुदेव (नारायण) शलाकापुरुष मे होते है। नारद कहते हैं—

सखचक गजापहण जासु, अरु बलभद्र सहोदर तासु।
सात ताल जो बाण नि हणइ, सो नारायण नारद भणइ॥

आपी ताहि वज्र मुदडी, सोहइ रतन पदारथ जडी।
कोमल हाथ करइ चकचूरु, सो नारायण गुण परिपुरु॥[19]

कृष्ण नारायण (वासुदेव) हैं क्योकि शख, चक्र, गदा आदि को धारण करने वाला तथा बलभद्र जिसके बडे भ्राता हो, वह शलाकापुरुष वासुदेव का ही लक्षण है। पुन वासुदेव कृष्ण का पराक्रम तथा शक्ति इससे प्रमाणित है कि वे एक बाण से सात ताल वृक्षो को एक साथ धराशायी कर सकते हैं, अपने कोमल हाथ से रत्नजडित वज्र मुद्रिका को दबाकर ही चूर-चूर कर सकते हैं।

पराक्रमी वासुदेव कृष्ण जब रुक्मिणि-हरण के पश्चात् अपना पाञ्चजन्य शख फूकते है तो सारी पृथ्वी थरथरा जाती है। सुमेरु पर्वत, कच्छप तथा शेषनाग भी काँप उठते है। कवि शालिवाहन इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते है—

लई रुक्मणि रथ चढाई
पचाइण तब पूरीयो।
णि सुनि वयणु सब शैन कप्यो,
महिमण्डल धर हर्यो॥
मेरु, कमठ तथा शेष कप्यो,
महलौ जाइ पुकारियो।
पुहुमि राहु अवधारीयो,
रुक्मणि हरि ले गयो॥[20]

इस घटना से कुपित रुक्मिणि के पिता भीष्मक तथा रुक्मिणि के लिए निश्चित वर शिशुपाल दोनो की सम्मिलित वाहिनी कृष्ण पर आक्रमण करती

है। इस भयकर युद्ध मे कृष्ण-बलराम का पराक्रम तथा कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन कवि इन शब्दो मे करता है—

सेशपाल अरू भीखम राउ,
पैदल मिलै ण सूझै ढाउ ।।
छोरणि बू दत उछली खेह,
जाणो गरजो भावो मेह ।।
शारगपाणि धनक ले हाथ,
शशिपालै पठउ जम साथ ।।
हाकि पचारि उठै दोऊ बीर,
बरसै बाण शयण घनणीर ।।[२१]

'नेमीश्वर रास' के रचयिता नेमिचन्द्र कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन करते समय इस बात का भी उल्लेख करते है कि शिशुपाल पर यह जो बाण छोड रहा है, वह नारायण (वासुदेव) हैं—

इतनी कहि जब कोपियो,
नारायण जब छोड्यो बाण तो ।
सिर छेदो शिशुपाल को,
भाजि गया सब दल बल पाण तो ।
शिशुपाल मारयौ पैजस्यो,
रुक्मयो लियौ जु बाधि ।
परणी राणी रूक्मणि,
लगन महुरत साधि ।।[२२]

इस सारे सन्दर्भ मे कृष्ण का अद्भुत पराक्रम व तेज प्रकट हुआ है। और इसका वर्णन करते समय कविजन इस तथ्य से प्रभावित रहे हैं कि कृष्ण वासुदेव (नारायण) है। उनके वासुदेव होने का उल्लेख भी कर दिया गया है। जैन कृतियो मे कृष्ण का यह वासुदेवत्व जरासन्ध-वध से ही पूर्ण हुआ है। जरासन्ध-वध से ही कृष्ण को वासुदेव रूप मे मान्यता मिली और देवगण ने वासुदेव राजा कृष्ण की अर्चना की। जैन दिवाकर मुनि चौथमलजी ने अपने काव्यग्रन्थ 'भगवान् नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' मे इस तथ्य को इन शब्दो मे अभिव्यक्त किया है—

जरासन्ध औ श्रीकृष्ण ने भारी युद्ध मचाया ।
शूरवीर भी दहल गए हैं, विद्याधर कपाया ।।
× ×
फिर तो जरासन्ध ने झु झला कर चक्ररत्न चलाया ।
यादव सुभट देख उस ताईं, तुरत मुख कुम्हलाया ।।
× ×

श्री कृष्ण ने उस चक्र को ग्रहण किया कर भाई।
सब के जी मे जी आया, फिर सभी रहे हुलसाई।।
देवगण कहे भरत क्षेत्र मे प्रगटे वासुदेव।
गधोदक अरु पुष्पवर्षा कर कीनी देवन सेव।।[२३]

कवि नेमिचन्द्र ने लिखा है—

क्षोभित किसन भयो तबे,
चक्र फेरि मेल्हयो तिहि बार तो।
सिर छेद्यो मगधेश को,
जय जय सबद भयो तिहि लोक तो।।[२४]

जरासन्ध वध के कारण तीनो लोको मे कृष्ण का जय-जयकार हुआ और उनका वासुदेव रूप मे अभिनन्दन किया गया।

इस घटना का वर्णन करते हुए कवि शालिवाहन ने लिखा है—

तब मागध ता सन्मुख गयो,
चक्र फिराई हाथ करि लयो।
तापर चक्र डारियो जामा,
तीनो लोक कपीयो तामा।।
हरि को नमस्कार करि जानि,
दाहिने हाथ चढ्यो सो आनि।
तब नारायण छाड्यो सोई,
मागध टूक रतन-सिर होई।।[२५]

बाल्यावस्था से ही जिनका अद्वितीय पराक्रम और तेजस्वी रूप प्रकट होने लगा था, और इसीलिए लोक मे यह सभावना प्रकट होने लगी थी कि कृष्ण वासुदेव राजा होगे, उसकी पूर्णता जरासन्ध-वध से सम्पन्न होती है। कस शिशुपाल आदि का वध तथा द्वारिका मे नये शक्तिशाली राज्य की स्थापना से कृष्ण भारत के नरेशो मे अग्रणी हो गये थे, परन्तु प्रबल पराक्रमी व महान् शक्तिशाली मगधराज जरासन्ध के वध के पश्चात् तो उनकी टक्कर का कोई नरेश ही नही बचा। वे अद्वितीय और सर्वपूजित माने गये। उन्हे चक्रवर्ती राजा स्वीकार किया गया। यही कृष्ण का वासुदेव (नारायण) स्वरूप है। विभिन्न कवियो के शब्दो मे—

बलबल साहस अनन्त,
करइ गर्व भेदनी बिलसत।।

तीन खण्ड चक्केसरी राउ,
अरिगण-दल भानइ मरिवाउ ।।[26] —सधारु

तथा—

सख चक्क गय पहरण धारा,
कम नरहिव करू सहारा ।
जिण चाणउरि मल्लु बिदारिउ,
जरासन्ध बलवन्तउ धाडिउ ।।[27] —देवेन्द्र सूरि

देवेन्द्रकीर्ति के शब्दो मे—

तहा कृष्ण धारापति, भावी त्रिखण्ड नरेश ।
अमर भूप रसाधिपति, सब राजान विशेष ।।
राज्य वैभव भोगवि, यादव कुला वर सूर ।
नागशैया जिमि दली, अरि करया चकचूर ।।[28]

द्वारिका मे राज्य करते हुए कृष्ण उसी प्रकार शोभित थे जैसे देवगण मे इन्द्र । यथा—

नयरिहिं रज्जु करेई तहिं कहु नरिंदू ।
नरवई भलि सणहो, जिव सुरगण इंदू ।।[29]

ऐसे श्रेष्ठ राजा के राज्य मे सब प्रकार से सुख और समृद्धि का प्रजाजन अनुभव करते है । अपने पाण्डव-यशोरसायन महाकाव्य मे मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमल्ल जी ने इन भावो को प्रगट करते हुए एक सुन्दर सवैया लिखा है, जो इस प्रकार है—

सब देश बिसे सुख सपति है अरू नेह बढ़ै नित को सब मे,
वित, वाहन, साजन धर्म धुरी कुल जालि दिपावत है तब मे,
नहि झूठ लबार जु लाधत ओवत में व्यसनी शुभ भावन में
मधुसूदन राज मे सर्व सुखी इत-कित दभीत लखी तब मे ।।[30]

कृष्ण की राजधानी द्वारिका भी विशिष्ट नगरी थी । विशिष्ट राजा की (वासुदेव की) विशिष्ट नगरी का वर्णन कवि समयसुन्दर ने इस प्रकार किया है—

नवयोजन नगरी बिस्तारा, बारा योजन आयाम अपारा ।
वापीकर प्रकार मनोहर, शत्रु-कटक सू अगम अगोचर ।।
पच रतन मणिमय को सोसा, राज-सिरि जाने आरीसा ।
रिद्धि समृद्धि करी सुख सारा, आणे अलकापुरी अवतारा ।।

अति ऊचा यादव आवासा, दण्ड कलश ध्वजपुण्य प्रकाशा।
नगरी बारावती कृष्ण नरेसा, राजा राज करहु सुविसेसा ।।[११]

कवि यशोधर ने लिखा है—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार ।
बार जोयण ते फिर तुंवसि, ते देखी जनमन उलसि ।
नव खण तेर खणा प्रासाद, हट्ट श्रेणी समलागुवाद ।
कोटिधन तिहा रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा ।।
याचक जननि देइ दान, न हीयउ हरख नहीं अभिमान ।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ।।[१२]

कवि जयशेखर सूरि ने भी अपने नेमिनाथ फागु मे श्रेष्ठ नगरी द्वारिका और वहाँ के महान वीर जरासन्ध-हन्ता वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन किया है—

दीपई जिणि जिणमदिर मदर शिखर समान,
दीसई दिसिदिसि हाटक हाट कहुक विमान ।।
धन दिहि सइ हथि थापिय वापी अ वर आरामि ।
मणि कण घण सूपरिय पूरिय द्वारका नामि ।।
× × ×
वसुधा वीर ववीतउ जीतउ जिणी जरासिंधु ।
तहि हरि बरिबल टालए राज सुबधु ।।[१३]

इस प्रकार प्राकृत आगमिक कृतियो और सस्कृत हरिवशपुराण के अनुरूप ही हिन्दी के जैन कवियो ने भी द्वारिका के वासुदेव राजा (अर्द्ध चक्रवर्ती राजा) कृष्ण की वीरता, श्रेष्ठता, शक्ति-सामर्थ्य व सम्पन्नता का पुरजोर शब्दो मे वर्णन किया है। द्वारिका नगर की भव्यता व सम्पन्नता तथा यादवगण और उनके यशस्वी राजपुरुष वासुदेव कृष्ण के पराक्रम व सामर्थ्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करके जैन साहित्यकारो ने कृष्ण की वीर-पूजा के ऐतिहासिक स्वरूप को ही वाणी दी है। जैन साहित्य के श्रीकृष्ण श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर है, अर्द्ध चक्रवर्ती राजा हैं तथा कस और जरासन्ध के हन्ता हैं।

(च) आध्यात्मिक राजपुरुष

(1) आगमिक व पौराणिक कृतियों में स्वरूप वर्णन

जैन साहित्य मे कृष्ण वासुदेव से युक्त राजपुरुष के रूप मे चित्रित हैं उनकी धार्मिक निष्ठा तीर्थंकर अरिष्टनेमि के सन्दर्भ मे वर्णित हुई है।

अपने चचेरे भाई अरिष्टनेमि को कृष्ण ने वैराग्य ग्रहण करने के अवसर पर बहुत समझाया परन्तु जब यह जान लिया कि अरिष्टनेमि अपने निश्चय पर अटल है, अडिग है तो उनके मनोरथ पूर्ण होने की भी कामना की—

वासुदेवो य ण भणइ लुत्त केस जिइदिय।
इच्छिय मणोरह तुरिय पावसुत्त दमीसरा ॥ [४]

अर्थात् लुचित केशवाले तथा जितेन्द्रिय उन अरिष्टनेमि से वासुदेव ने कहा— 'हे सयम श्रेष्ठ ! तुम शीघ्र ही इच्छित मनोरथ प्राप्त करो।'

अपने तप के बल पर अरिष्टनेमि ने अपना मनोरथ प्राप्त किया। वे लोक अर्हत् रूप मे प्रसिद्ध हुए। उनका धार्मिक नेतृत्व अनेक ने स्वीकार किया। जैन साहित्यिक कृतियो मे प्राप्त वर्णनो के अनुसार अरिष्टनेमि द्वारिका के नागरिको को उद्‌बोधन देने हेतु द्वारिका आते ही रहते थे। उनके द्वारिका प्रवास से सम्बन्धित अनेक प्रसगो का आगमिक कृतियो मे वर्णन हुआ है। इनमे कतिपय विस्तृत प्रसग हैं—

गौतमकुमार चरित वर्णन,[३५]
गजसुकुमाल चरित,[३६]
यादवो तथा द्वारिका के भविष्य के सम्बन्ध मे,
कृष्ण-अरिष्टनेमि के प्रश्नोत्तर,[३७]
थावच्चा-पुत्र की प्रव्रज्या,[३८]
निषधकुमार का प्रसग आदि।

इन सभी प्रसगो मे अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन का, उनकी धर्मसभा मे कृष्ण वासुदेव, उनके परिवार जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिको के जाने का तथा प्रत्येक अवसर पर अरिष्टनेमि के उपदेश से प्रभावित होकर कृष्ण वासुदेव के किन्ही परिवार-जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिको द्वारा अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे दीक्षा लेने का प्रासगिक वर्णन है।

आठवे अगग्रन्थ अन्तकृद्‌दशा (अतगड्‌दसाओ) के ही प्रथम पाँच वर्ग अरिष्टनेमि के द्वारका आगमन से सम्बन्धित वर्णनो से युक्त हैं। इन वर्गों के अनेक अध्ययनो मे स्वय श्रीकृष्ण की रानियाँ, पुत्र-पौत्रादि, पुत्र-वधुएँ, सहोदर अनुज तथा अन्य अनेक पारिवारिक बन्धुओ के अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे दीक्षित होने का वर्णन हुआ है। इन दीक्षार्थियो मे कृष्ण की प्रमुख रानियो—पद्‌मावती देवी, जाम्बवती देवी, सत्यभामा देवी, रुक्मिणी देवी, लक्ष्मणा देवी, सुसीमा देवी, गौरी देवी, तथा गान्धारी देवी,[४०] पुत्र-प्रपौत्र—प्रद्युम्न कुमार, शाम्ब कुमार, तथा अनिरुद्ध कुमार[४१], सहोदर अनुज गजसुकुमाल[४२] तथा अन्य बन्धु-बान्धवो, यथा—

गौतम कुमार, समुद्र कुमार, सागर कुमार, गम्भीर कुमार, स्तिमित कुमार, अचल कुमार, काम्पिल्य कुमार, अक्षोभ कुमार, प्रसेनजित कुमार, विष्णु कुमार, अक्षोभ कुमार, धरण कुमार, अभिचन्द्र कुमार, सारण कुमार, सुमुख कुमार, द्विमुख कुमार, दारुक कुमार, अनाधृष्टि कुमार, जालि कुमार, मयालि कुमार, वारिषेण कुमार, सत्यनेमि कुमार, दृढनेमि कुमार तथा अन्य अनेक का अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने का उल्लेख है।[४१]

अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन से सम्बन्धित विविध आगमिक कृतियो मे वर्णित प्रसग जिस तथ्य की पुनरावृत्ति करते है वह हैं—

द्वारिका मे अरिष्टनेमि आये, यह जानकर द्वारिकाधीश कृष्ण सदल-बल उनके वन्दन तथा धर्मकथाश्रवण को गये। इन प्रसगो मे इस तथ्य का वर्णन लगभग एक समान-सा ही है। उदाहरण के लिए अन्तकृद्दशाग सूत्र के ही दो स्थल उद्धृत है—

तते ण से कण्ह वासुदेवे बारवतीये नयरीये मज्झ-मज्झेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छिता जेणेव सहसबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तते ण अरहा अरिष्टनेमि कण्हस्य वासुदेवस्य गयसुकुमालस्य कुमारस्य तीसे य धम्मकहाए कण्ह पडिगते।[४४]

अर्थात्—तब कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मे से निकलकर सहस्राम्र नामक उद्यान मे पहुँचे। तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, गजसुकुमाल कुमार तथा अन्य को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर कृष्ण चले गये।

तेण कालेण तेण समएण बारवती णयरी जह पढमे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्च जाव विहरइ। तस्स ण कण्हस्स वासेदेवस्य पउमावती नाम देवी होत्था। तेण कालेण, तेण समएण अरहा अरिष्टनेमि समोसढे जाव विहरइ। कण्हे वासुदेवे णिग्गते जाव पज्जुवासइ, तते ण सा पउमावती देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणो हट्ठजह' देवती जाव पाज्जुवासइ। तएण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्य वसुदेवस्य पउमावतीए य धम्म कहा, परिसा पडिगया।[४५]

अर्थात्—उस काल, उस समय द्वारिका नगरी थी जहाँ (पहले वर्णन के अनुसार ही) कृष्ण वासुदेव राज्य कर रहे थे। कृष्ण वासुदेव की पद्मावती नाम की रानी थी। उस काल, उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी से निकले, यावत उनकी वन्दना की। अनन्तर वह पद्मावती देवी इस वृतान्त को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई तथा (देवकी के समान ही) उनकी वन्दना को गयी। तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी आदि को धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुनकर परिषद् (जनता) चली गयी।

इस धर्मकथा के अनन्तर कतिपय लोगो का अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने का वर्णन सभी प्रसगो मे समान रूप से हुआ है। इन प्रसगो से एक ही बात ध्वनित होती है कि कृष्ण वासुदेव की अरिष्टनेमि के धर्मोपदेशो मे रुचि थी। वे उनके उपदेश सुनते थे और यदा-कदा धर्म सम्बन्धी प्रश्न भी पूछ लेते थे। वासुदेव कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही द्वारिका नगरी के विनाश तथा यादव कुल नाश का भविष्य कथन के रूप मे वर्णन हुआ है। इसी वर्णन मे कृष्ण वासुदेव के देहत्याग तथा भावी जन्म का भी उल्लेख है। इस प्रकार आत्मा की नश्वरता तथा पुनर्जन्म क सिद्धान्त का कथन अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव के प्रति करते है। अन्तकृद्दशाग सूत्र मे ही आया यह प्रसग पर्याप्त विस्तार मे है, जिसको मूल रूप मे (अनुवाद सहित) यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"तते ण कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि वदइ, णमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—इमी से ण भते। बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव देवलोग भूयाए कि मूलाले विणासे भविस्सइ?

कण्हाइ। अरहा अरिट्ठनेमि कण्ह वासुदेव एव वयासी—एव खलु कण्हा, इमीसे बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

कण्हस्य वासुदेवस्य अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अतिए एव मोच्चा निसम्म एव अब्भत्थिए ४ समुप्पन्न—

धन्ना ण ते जालि-मयालि-उवयालि पुरिससेण-वारिसेण-पजुन्न-सब अनिरुद्ध-दढनेमि-सच्चनेमिप्पमियओ कुमारा जेण चइत्ता हिरण्ण जाव परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिय मुडा जाव पव्वइया अहृण्ण अधन्न, अकयपुण्णे रज्जे य जाव अतेउरे य मणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए ४, नो सचाएमि अरहतो अरिट्ठनेमिस्स जाव पवइत्तए।

कण्हाइ। अरहा अरिट्ठनेमि कण्ह वासुदेव एव वयासी—से नूण कण्हा! तव अय अब्भत्थिए ४ समुपन्ने—धन्ना ण ते जाव पव्वइत्तए। से नूण कण्हा! अयमट्ठे समट्ठे! हन्ताअत्थि। त ना खलु कण्हा। त एव भूत वा भव्व वा भविस्सइ वा जन्न वासुदेवाचइत्ता हिरण्ण जाव पव्वइस्सन्ति।

से केणट्ठेण भते! एव बुच्चइ—न एय भूय वा जाव पव्वतिस्सति? कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमि कण्ह वासुदेव एव वयासी—एव खलु कण्हा, सव्वे वियण वासुदेवा पुव्वभवे निदाण कडा, से एतेणट्ठेण कण्हा! एव बुच्चति न एय भूय जाव पव्वइस्सति"।[६]

हिन्दी अनुवाद—इसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि की

वन्दना की। वन्दना एव नमस्कार के पश्चात् इस प्रकार कहने लगे—"हे भते! इस नौ योजन विस्तृत एव देवलोक समान द्वारिकानगरी का विनाश किस कारण से होगा? अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"हे कृष्ण! यह नौयोजन विस्तृत द्वारिका नगरी सुरा, अग्नि तथा द्वैपायन ऋषि के कारण से विनष्ट होगी।"

अर्हत् अरिष्टनेमि की यह बात सुनकर कृष्ण वासुदेव ने सोचा, विचार किया तथा उनके हृदय मे यह सकल्प हुआ कि वे जालिकुमार, मयालि कुमार उपयालि कुमार, पुरुषषेण कुमार, वारिषेण कुमार, प्रद्युम्न कुमार, शाम्ब कुमार अनिरुद्ध कुमार, दृढनेमि कुमार, सत्यनेमि कुमार आदि धन्य हैं, जो सुवर्ण आदि अपने धन को छोडकर उसे बाँट कर अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गये। परन्तु मै अकृतपुण्य हूँ जो राजवैभव तथा अन्त पुर के मानवीय कामोपभोगो मे लिप्त हो रहा हूँ और इतना समय नही हैं कि अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो सकूँ।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से पूछा—"हे कृष्ण आपके हृदय मे यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ है कि व धन्य है जो प्रव्रजित हो गये? क्या यह ठीक है? कृष्ण के यह कहने पर कि यह ठीक है, अरिष्टनेमि ने कहा—"हे कृष्ण, यह इस प्रकार से न कभी भूतकाल मे हुआ है, न अब हो रहा है तथा न भविष्य मे होगा कि जो वासुदेव (अर्द्धचक्रवर्ती राजा) सुवर्ण आदि को छोडकर इस प्रकार प्रव्रजित हो।"

कृष्ण ने कहा—"हे भते! ऐसा किस कारण से आपने कहा?" अर्हत् अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण से कहा—"हे कृष्ण! सभी वासुदेव (श्रेष्ठ पुरुष) पूर्व भव मे निदान किये हुए होते ह (अर्थात वासुदेव अपने पूर्व जन्म मे किसी अनुष्ठान विशेष से फल-प्राप्ति की अभिलाषा किये हुए होते है) इस कारण से हे कृष्ण! ऐसा कहा जाता है कि ऐसा पहले कभी नही हुआ कि वासुदेव प्रव्रजित हो सके हो।"

अरिष्टनेमि के इस कथन के माध्यम से एक विशाल राज्य के शक्तिशाली अधिपति का सब कुछ एकाएक त्यागकर विरक्त हो जाने की परवशता का वर्णन है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि कृष्ण वासुदेव की तीर्थकर अरिष्टनेमि के धार्मिक सिद्धान्तो मे अभिरुचि तो थी परन्तु वे उनके वैराग्य मार्ग के पथिक नही हो सके थे।

वासुदेव कृष्ण का अरिष्टनेमि की धर्मसभाओ मे उपस्थित होने तथा धर्मोपदेश सुनने का ऐसा ही वर्णन विभिन्न भाषाओ मे रचित जैन काव्य कृतियो मे हुआ है। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनो ही परम्परा के साहित्य मे इस तथ्य कथन का लगभग एक-सी ही शब्दावली मे वर्णन है। उदाहरण के लिए, दिगम्बर

परम्परा के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण के निम्न श्लोक भी द्रष्टव्य हैं—

> वसुदेवो बल कृष्ण सान्त पुरसुहृज्जन ।
> द्वारिकाप्रजया युक्त प्रद्युम्नादिसुतान्वित ॥
> विभूत्या परयागत्य शैवयमभिवन्द्यते ।
> आसीना समवस्थाने धर्मं शुश्रूषुरीश्वरात् ॥[४०]

अर्थात् अन्त पुर की रानियो, मित्रजन द्वारिका की प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रो से सहित वसुदेव, बलदेव तथा कृष्ण बडी विभूति के साथ आये तथा वन्दना कर समवसरण मे यथास्थान बैठ कर भगवान् से धर्म श्रवण करने लगे।

प्राकृत तथा संस्कृत ग्रन्थो की लगभग ऐसी शब्दावली का ही आधुनिक भारतीय भाषाओ की कृतियो मे भी उपयोग हुआ है। आगे हिन्दी काव्य-कृतियो के उदाहरण से यह मान्यता स्पष्ट हो जाती है।

(ii) हिन्दी कृतियो मे वर्णन

हिन्दी जैन कवियो ने नेमिनाथ चरित को आधार बना कर बहुत-सी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। इन सभी कृतियो मे प्रारम्भ मे द्वारिका के शक्तिशाली व महान् विभूति से सम्पन्न राजा कृष्ण वासुदेव का उल्लेख हुआ है तथा अन्तिम भाग मे अर्हत् अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन के प्रसग वर्णन मे कृष्ण वासुदेव का सदल बल उनकी धर्मसभा मे जाने तथा उपदेश श्रवण का वर्णन है। इसी प्रकार का वर्णन प्रद्युम्न कुमार तथा गजसुकुमार के चरित से सम्बन्धित काव्य कृतियो मे हुआ है। हिन्दी जैन कवियो ने संस्कृत 'हरिवशपुराण' के अनुकरण पर हरिवश पुराण ग्रन्थो की रचना की है। इन कृतियो मे जरासन्ध-वध के फलस्वरूप कृष्ण का वासुदेव राजा के रूप मे प्रतिष्ठित होने, तत्पश्चात सुखोपभोग करते हुए प्राय द्वारिका मे ही निवास करने का वर्णन है। जरासन्ध-वध के पश्चात् की की कालावधि मे ही द्वारिका मे अरिष्टनेमि कुमार की विरक्ति तथा अर्हत् रूप मे प्रसिद्धि पा जाने की घटनाएँ घटित हुई। इस के बाद का द्वारिका का वातावरण अर्हत् अरिष्टनेमि से प्रभावित रहा है। अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन तथा उनके उपदेश श्रवण से कतिपय लोगो का वैराग्य द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन ही इन कृतियो मे प्रमुखता से हुआ है।

अरिष्टनेमि के आगमन से सम्बन्धित घटनाओ का विवरण अधिक विस्तार मे न होकर उल्लेख रूप मे है। जब भी अरिष्टनेमि द्वारिका आते कृष्ण, वासुदेव बलराम तथा द्वारिका के अन्य यादवगण उनके उपदेश श्रवण को जाते थे।

आदिकालीन हिन्दी काव्य कृति 'प्रद्युम्न चरित' (१३५४ ई०) के रचयिता कवि सधारु ने नेमिनाथ के आगमन पर यादवो तथा कृष्ण का उनकी उपदेश

सभा (समवसरण) मे उपस्थित होने का वर्णन इस प्रकार किया है—

छप्पन कोटि जादव मन रलै,
नारायण स्यो हलधर चले।
समउसरण परमेसरु जहाँ,
हलधर कान्ह पहुँचे वहाँ ॥[४८]

इन सभाओ मे उपस्थित होकर कृष्ण धर्मोपदेश सुनते तथा अपनी शकाओ का समाधान भी प्राप्त करते। कवि नेमिचन्द्र के शब्दो मे—

नमस्कार फिरि-फिरि किया
प्रश्न किया तब केशोराय।
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को,
धर्म-अधर्म कह्यो जिनराय ॥[४६]

अरिष्टनेमि के उपदेशो से प्रभावित होकर अनेक द्वारिकावासी उनके पास वैराग्य की दीक्षा ले लेते थे। अरिष्टनेमि के इन प्रवासो का द्वारिका के जन-जीवन पर बडा प्रभाव पडा। जैन कवि के अनुसार, स्वय कृष्ण वासुदेव की रानियो तथा पुत्रादि ने अरिष्टनेमि से प्रभावित होकर सन्यासमार्ग की दीक्षा ग्रहण कर ली थी। यथा—

पटराणी केसो तणी,
रुक्मणि नै दे आदि।
दीख्या ली जिनराज की
तपस्या करे सुसादि ॥

तथा—

प्रद्युम्न सबुकुमार, अनिरुद्धो
प्रद्युम्न सुत धीर तौ।
तीनो जाय दीक्षा ग्रही
जादव और सबै वर वीर तौ ॥[५०]

विभिन्न हिन्दी कृतियो मे लगभग इसी शब्दावली मे अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन, उनकी उपदेश-सभा मे कृष्ण, बलराम तथा उनके परिवार-जन सहित अनेक द्वारकावासियो का उपस्थित होना और उपदेशो से प्रभावित होकर उनमे से कुछ का वैराग्य की दीक्षा ले लेने का वर्णन है। इसी कथन की पुनरावृत्ति सभी कृतियो मे प्रसगानुसार हुई है। इससे अधिक वर्णन अथवा प्रसग का विवरण इन कृतियो मे नही हुआ है। अत समान-सी शब्दावली मे उपलब्ध इन उल्लेखो की पुनरावृत्ति को अनावश्यक समझकर हम यह प्रकरण यही समाप्त कर रहे हैं।

कृष्ण का बाल-गोपाल रूप

जैन साहित्य मे कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश

आचार्य जिनसेन कृत सस्कृत हरिवशपुराण (८वी शताब्दी ई०) मे कृष्ण वासुदेव के परम्परागत स्वरूप-वर्णन के साथ-साथ उनकी बाल्यावस्था के वर्णन क्रम मे उनके बाल-गोपाल रूप का वर्णन ध्यान देने योग्य है। इस पुराण के अनुकरण पर कालान्तर मे अपभ्र श तथा हिन्दी जैन कृतियो मे भी कृष्ण वासुदेव के बाल-गोपाल रूप का वर्णन मिलता है। इस वर्णन के दो रूप है—

(i) नटखट व चपल ग्वाल-बालक नटखट व चपल ग्वाल बालक के रूप मे कृष्ण के दूध-दही खाने फैलाने तथा विविध बालसुलभ क्रीडाएँ करने का वर्णन है।

(ii) कृष्ण का गोपाल वेश गोपाल वेश मे पीताम्बर पहनने, मयूर-पिच्छ का मुकुट धारण करने, आभूषण पहनने तथा पुष्पो की माला धारण करने का वर्णन है।

कृष्ण का यह बाल-गोपाल रूप बाल्यकाल मे उनके गोकुल-प्रवास की कथा के सन्दर्भ मे वर्णित है। जैनागमो मे कृष्ण के गोकुल प्रवास की घटना का वर्णन नही है। अत हरिवशपुराण मे इस घटना का वर्णन तथा इसके कारण कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश जैनेतर परम्परा के प्रभाव स्वरूप है।

कृष्ण के बाल-गोपाल रूप के स्रोत

डॉ० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत है कि कृष्ण की गोकुल-कथा तथा 'महाभारत' मे वर्णित उनके उत्तरकालीन जीवन की कथा का कोई मेल नही है। साथ ही, महाभारत के किसी अश से कृष्ण के इस प्रकार के बाल्यकाल की कोई जानकारी प्राप्त नही होती है। सभापर्व के अध्याय ३१ मे शिशुपाल ने कृष्ण की निन्दा करते हुए उनके गोकुल मे किये गये पूतना वध आदि कर्मों का जो उल्लेख किया है, उसे डॉ० भण्डारकर प्रक्षिप्त अश मानते हैं। इस प्रकार उन्होने महाभारत काल तक कृष्ण की गोकुल-कथा को अपरिचित माना है। साथ ही उन्होने हरिवश, वायु एव भागवत आदि पुराणो मे गोकुल के दैत्यो एव कस के नाश के लिए कृष्ण के अवतार लेने के वर्णन को इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि इन ग्रन्थो के प्रणयन

के समय तक कृष्ण की गोकुल-कथा प्रचलित हो गयी होगी।[1]

इस दृष्टि से जिनसेन कृत हरिवंशपुराण, वैष्णव हरिवंशपुराण से प्रभावित रचना है। कृष्णजन्म की परिस्थितियाँ, वसुदेवजी द्वारा सद्य जात कृष्ण को गोकुल ले जाना तथा नन्द गोप के संरक्षण में छोडना, बदले में यशोदा की पुत्री को लाना, कृष्ण का गोकुल में लालन-पालन तथा बचपन व्यतीत करना, कंस द्वारा कृष्ण को मारने के प्रयत्न और अन्त में मल्लक्रीड़ा के आयोजन के अवसर पर कृष्ण-बलराम द्वारा कंस के मल्ल चाणूर व मुष्टिक के साथ ही कंस का वध करना आदि घटना क्रम पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो दोनों में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। किन्तु पाँचवी शताब्दी में संकलित जैनागमों की कृष्ण-कथा में कृष्ण का गोकुल प्रवास तथा कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन नहीं है, अतः हमारे यह मानने का बहुत बड़ा आधार है कि जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के ये प्रसंग वैष्णव पुराणों, मुख्यतः हरिवंशपुराण के प्रभाव स्वरूप, इस पुराण में ग्राह्य हुए हैं। इस प्रभाव का भी एक कारण है। चूँकि परम्परागत जैनागमिक कथा में कृष्ण के माता-पिता का नाम देवकी वसुदेव उपलब्ध होता है। कृष्ण द्वारा कंस के वध का भी वर्णन है, परन्तु कृष्ण के बाल्यकाल का वर्णन तथा उक्त कथा-प्रसंगों को जोडनेवाली किसी कथावस्तु का अभाव है। स्वभावतः अपने हरिवंशपुराण ग्रन्थ में कृष्ण-कथा को पूर्ण एवं व्यवस्थित रूप देते समय आचार्य जिनसेन वैष्णव हरिवंशपुराण की कृष्णकथा से प्रभावित हुए। उन्होंने वैष्णव कथा के इन प्रसंगों को अपने मन्तव्यानुसार परिवर्तित करके अपना लिया। ग्वालों के मध्य पलनेवाले कृष्ण का गोपाल वेश व चपल बालक के रूप में उनके दूध-दही खाने-फैलाने के वर्णन उन्हें ग्राह्य हो सके। वैष्णव-पुराणों में गोपाल-कृष्ण की भावना का पूर्णरूप से विकास हरिवंशपुराण में द्रष्टव्य है। हरिवंशपुराण के लगभग २० अध्यायों में गोपाल कृष्ण से सम्बन्धित प्रसंग वर्णित हैं। इन प्रसंगों में पूतनावध, शकटवध, दाम बन्ध, यमलार्जुन भंग, धेनुक वध, गोवर्द्धन धारण, वृषभासुर वध, केशी वध आदि का वर्णन है।

डॉ० भण्डारकर ने महाभारतेतर वैष्णवपुराणों में गोकुल के कृष्ण की कथा का समावेश आभीर जाति के कारण माना है। यह जाति गोपालक थी। आज भी अहीरों में गोपालन तथा कृषि मुख्य व्यवसाय है। भण्डारकर ने प्रमाण देकर यह बताया है कि इस जाति के लोग मथुरा के समीपवर्ती मधुवन से लेकर द्वारिका के आस-पास तक विस्तृत क्षेत्र में बसे थे तथा ई० सन् की दूसरी-तीसरी शताब्दी में ये उच्च राजनैतिक स्थिति प्राप्त कर चुके थे। आभीर राजाओं—ईश्वसेन व क्षत्रप रुद्रसिंह से सम्बन्धित अभिलेख क्रमशः नासिक तथा गुण्डा काठियावाड प्रदेश) में प्राप्त हुए हैं। डॉ० भण्डारकर का विचार है कि संभवतः आभीर जाति के लोग अपने साथ बालक (कृष्ण) की पूजा, उनके असाधारण जन्म,

उनके पिता का यह ज्ञान कि वह उनके पुत्र नही हैं, एव अबोध शिशुओ की हत्या की कथाएँ अपने साथ लाये थे। नन्द को यह ज्ञात था कि वे कृष्ण के पिता नही हैं तथा कस शिशुओ का वध कर देता है। जगली गर्दभ के रूप मे धेनुकासुर के वध जैसी कृष्ण के बाल्यकाल की कथाएँ आभीर अपने साथ लाये तथा अन्य कथाएँ उनके भारत मे आने के बाद विकसित हुई।[2]

कृष्णचरित वर्णन की दृष्टि से वैष्णव-पुराणो मे श्रीमद्भागवत का महत्व पूर्ण स्थान है। इस पुराण मे कृष्णलीला का सर्वाधिक व्यवस्थित वर्णन है। इसमे प्रथम बार कृष्ण की बाल, किशोर और यौवन लीलाओ का व्यापक वर्णन है। कृष्ण की लीलाओ का वर्णन दशम स्कन्ध मे हुआ है। बालक कृष्ण की गोकुल लीला मे(पाँच वर्ष की वय तक लीलाओ मे) पूतना-वध (अध्याय छ), शकट-भग (अध्याय सात), नामकरण, मृतिका-भजन, मुख मे विश्वरूप दर्शन (अध्याय आठ), उखल बन्धन(अध्याय नवम), तथा यमलार्जुन उद्धार (अध्याय दशम) आदि की लीलाएँ प्रमुख हैं।

वृन्दावन लीला (वय ८ वर्ष तक) मे वत्सासुर-वध, बकासुर-वध, अघासुर वध, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स हरण, ब्रह्मा-मोह-भग, गो-वत्स प्रत्यावर्तन, धेनुकासुर-वध, कालियादमन, दावानल-पान तथा प्रलम्बासुर-वध आदि का वर्णन है। यह अध्याय ११ से १८ तक हुआ है।

किशोर लीला मे शरद-वर्णन, वेणु गीत, चीरहरण तथा गोवर्द्धन धारण की लीलाएँ अध्याय २०-२५ मे वर्णित है। तदनन्तर अध्याय २९-३६ मे कृष्ण की यौवन-लीला का वर्णन है। पाँच अध्यायो मे वर्णन होने के कारण इसे रास पचाध्यायी भी कहते है। गोपी-कृष्ण लीला का सुमधुर रूप इसी रास-लीला मे वर्णित है। इनमे वेणुनाद आकर्षण, रासारम्भ, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियो का कृष्ण-लीला अनुकरण, गोपी गीत, कृष्ण का आश्वासन एव महारास का वर्णन है। महारास वर्णन मे कृष्ण की वशी प्रेरित, सजी- धजी गोपियो का प्रियतम कृष्ण के पास आना, कृष्ण द्वारा उनके समस्त काम-स्थलो का स्पर्श कर उन्हे पूर्णत उद्दीप्त कर देना और पूर्ण-आनन्द के उस क्षण मे कृष्ण का अपनी एक प्रियतम गोपी को साथ लेकर रास से अन्तर्धान हो जाने आदि का वर्णन है।

जैन-साहित्य मे कृष्ण वासुदेव के जिस बाल-गोपाल रूप का वर्णन हुआ है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि भागवतपुराण की उक्त कृष्ण-लीला वर्णन का जैन साहित्य पर प्रभाव नही है। अपेक्षाकृत वैष्णव हरिवशपुराण ही एक मात्र ग्रन्थ है जिस का जैन परम्परागत कृष्ण स्वरूप वर्णन पर प्रभाव पडा है।

जैन पौराणिक कृतियो मे कृष्ण के बाल-गोपाल रूप

गोपालक नन्द के यहाँ पलते समय बालक कृष्ण का ग्वाल बालक का वेश

धारण करना तथा दूध-दही का खाना फैलाना सामान्य है। अत कृष्ण के गोपाल बालक रूप का वर्णन करते समय आचार्य जिनसेन इन तत्त्वो का ही अपने हरिवशपुराण ग्रन्थ मे वर्णन करते हैं। यह वर्णन भी अति सक्षिप्त और उल्लेख रूप मे ही है।

(1) नटखट व चपल गोप बालक

बालक कृष्ण की क्रीडाओ का आचार्य जिनसेन ने इस प्रकार से वर्णन किया है—

स्वपन्निषीदन्नुरसा प्रसर्पन् पद वदन्नस्खलित प्रधावन् ।
कलाभिलापो नवनीतमश्नन्नजीगमज्जिष्णुरहर्दिनानि ।।[3]

बालक कृष्ण कभी सोता था, कभी बैठता था, कभी छाती के बल सरकता था, कभी लडखडाते पैर उठाते हुए चलता था, कभी दौडा-दौडा फिरता था, कभी मधुर आलाप करता था, कभी मक्खन खाता हुआ दिन-रात व्यतीत करता था। इसी एक मात्र श्लोक मे कवि ने कृष्ण की शिशु-क्रीडा का वर्णन कर दिया है।

आचार्य गुणभद्र ने अपने महापुराण (उत्तर पुराण) मे कृष्ण की बाललीला का इतना भी उल्लेख नही किया है। अपभ्र श के महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने ग्रन्थ 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालकारु' (महापुराण) मे कृष्ण की बाल-लीलाओ का सक्षिप्त वर्णन ही किया है। कवि ने धूल घूसरित कृष्ण का ग्वाल-बालको के साथ खेलने, दही खाने-फैलाने तथा, अन्य बाल-सुलभ कौतुको का वर्णन इस प्रकार किया है—

धूलीधूसरेण वरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला रसवसेण गोवालय गोवी हिययहारिणा ।।[4]

अण्णहिं पुणुदिणि	तहिंणियपगणि ।
जणमणहारी	रमइ मुरारी ।
घोट्टइ खीरं	लोट्टइ णीर ।
भजइ कुभ	पेलयइ डिभ ।
छडइ महिण	चक्खइ दहियं ।।[5]

कृष्ण की बाल-क्रीडाओ का यह सक्षिप्त विवरण भी बृहत्काय पौराणिक काव्य-कृतियो मे ही उपलब्ध है। वह भी विशेषत हरिवशपुराण (आचार्य जिनसेन) तथा इसके अनुकरण पर रचित रचनाओ मे ही द्रष्टव्य है। छोटी काव्य कृतियो मे तो इसका उल्लेख तक भी नहीं है।

(11) **बालक कृष्ण का गोपाल वष**

यही स्थिति कृष्ण के गोपाल-वेश वर्णन की है। हरिवशपुराण मे आचार्य जिनसेन कृष्ण के गोपालवेश का वर्णन इस शब्दो मे करते है—

> **सुपीतवासो युगल वसान वनेवतसीकृतबर्हिबर्हम् ।[६]**
> **अखण्डनीलोत्पलमुण्डमाल सुकण्ठिकाभूषितकम्बुकण्ठम ।।**
> **सुवर्णकर्णाभरणोज्ज्वलाभ सुबन्धुजीवालिकमुच्चमौलिम् ।**
> **हिरण्यरोचिवलयप्रकोष्ठ सुपादगोपालकसानुवशम् ।।**
> **यशोदयानीय यशोदयाढ्य प्रणामित पुत्रमसौ सवित्री ।**
> **सुगोपवेष निकटे निषण्ण परामृशन्ती चिरमालुलोके ।।**

अर्थात् जो पीले रग के दो वस्त्र पहने था, वन के मध्य मे मयूर-पिच्छ की कलगी लगाये हुए था, अखण्ड नील कमल की माला जिसके गले मे पडी हुई थी, जिसका शख के समान सुन्दर कण्ठ उत्तम कण्ठी से विभूषित था, सुवर्ण के कर्णाभरणो से जिसकी आभा अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, जिसके ललाट पर दुपहरिया के फूल लटक रहे थे, सिर पर ऊँचा मुकुट बँधा था, कलाइयो मे स्वर्ण के कडे सुशोभित थे, जिसके साथ अनेक सुन्दर बालक थे एव जो यश और दया से सुशोभित था, ऐसे पुत्र को लाकर यशोदा ने देवकी के चरणो मे प्रणाम कराया। उत्तम गोप के वेष को धारण करनेवाला वह पुत्र प्रणाम कर पास ही मे बैठ गया।

श्री कृष्ण का यह गोपाल-वेश वर्णन उल्लेख जैसा ही है। जैन कवि इसके भी विस्तार मे नही गया है।

हिन्दी जैन साहित्य मे कृष्ण का बालगोपाल रूप

जिनसेन कृत हरिवशपुराण के अनुकरण पर कृष्ण के बालगोपाल रूप वर्णन की प्रवृत्ति हिन्दी जैन साहित्य मे भी रही है। हिन्दी जैन कवियो ने भी गोप-बालक कृष्ण की दूध-दही खाने-फैलाने की बाल क्रीडाओ का तथा गोप-बालक कृष्ण के गोप-वेश का सामान्य-सा वर्णन करके कथाक्रम को आगे बढा दिया है। बाल गोपाल कृष्ण का सक्षिप्त वर्णन कृष्ण वासुदेव के सम्पूर्ण जीवन-चरित को वर्णन करनेवाली कतिपय कृतियो मे ही उपलब्ध है।

(1) **नटखट व चपल गोप-बालक**

अपने हरिवश-पुराण ग्रन्थ मे कवि शालिवाहन ने गोप-बालक कृष्ण की बालक्रीडा का वर्णन करते हुए लिखा है—

आपुन खाई ग्वाल घर देई,
घर को आर विराणी लेई।
घर-घर बासण फोडे जाई,
दूध-दही सब लेहि, छिडाई ॥[७]

गौ-पालको की बस्ती है। गोपालक नन्द का नटखट व चपल बालक कृष्ण न केवल अपने घर का दूध दही खाता-फैलाता है, अपितु अवसर मिल जाता है तो ग्वाल-साथी के घर मे भी उसके साथ मिलकर उसके घर का दूध-दही खाने फैलाने मे भी पीछे नही रहता है। अपने घर मे स्वय खाकर ही सन्तुष्ट नही हो जाता, अपने साथी ग्वाल-बालक को भी ले जाकर देता है। नटखट और चपल होने के साथ ही बालक कृष्ण बडा निर्भीक स्वभाव का है। माता यशोदा जब उसे मक्खन खाते फैलाते देखती है, तो डाँटती है तथा डराने का प्रयत्न करती है। परन्तु बालक कृष्ण डरता नही है। कवि नेमिचन्द लिखते है—

माखण खायए फैलाय,
मात जसोदा बाधे आणि तौ।
डरपायौ डरपै नही,
माता तणीय न मानै काणि तौ ॥[८]

चपल बालक कृष्ण का लगभग इन्ही शब्दो मे विभिन्न हिन्दी जैन कवियो ने वर्णन किया है। 'पाण्डव यशोरसायन' काव्य के रचयिता मुनि मिश्रीमल्ल के गोप बालक कृष्ण के इस नटखट रूप का वर्णन द्रष्टव्य है—

दहीडो डाले दूध मे, मांखण जल मांही रे।
जल राखे कभी छाछ मे, भू राख भराई रे ॥
कौतुक दूध का कर रह्या, खेले अपने दावे रे।
अधर बजावे बसुरी, सब ही हस जावे रे ॥
पुरस्योरे खावे नहीं, माया नजर चुरावे रे।
छाने कोठा मे घुसी, माखन गटकावे रे ॥[९]

दही दूध मे डालना, मक्खन को पानी मे डाल देना, छाछ मे जल मिला देना, राख देखकर मुँह मे राख भर लेना, अपनी मन-मस्ती मे खेलना, कभी बाँसुरी बजाना, माता यशोदा खाना खिलाने का प्रयत्न करे तो खाना न खाना और उसकी आँख बचाकर भाग जाना, कोठे म अर्थात् नीचे के घर मे घुसकर, छिपकर मक्खन खाना आदि कृष्ण की बाल-सुलभ क्रीडाओ का जैन कवि ने वर्णन किया है। जैन कवि के लिए बालक कृष्ण एक नटखट गोप बालक से अधिक कुछ नही हैं। अत उसने उसके बालक रूप का सहज-सामान्य ही वर्णन किया है।

बालक कृष्ण का गोपाल वेष

गौ पालकों के बीच रहनेवाले गौ पालक नन्द के पुत्र कृष्ण की वेश-भूषा भी ग्वाल-बालको जैसी ही है। इस वेश भूषा मे (गोपाल-वेश मे) हिन्दी जैन कवि ने उनके पीले रग के वस्त्र धारण करने, कानो मे कुण्डल पहनने, सिर पर मोर पखो का मुकुट धारण करने तथा बाँसुरी बजाने का वर्णन किया है—

यथा—

> **कानाकुण्डल जगमगे**
> **तन सोहे पीताम्बर चीर।**
> **मुकुट विराजे अति भलो,**
> **वशी बजावे श्याम-शरीर ॥[10]**

ऐसा गोपाल वेश धारण करनेवाला, श्यामल सुन्दर कृष्ण गोपियो के सहज आकर्षक का केन्द्र है। उसका चपल बाल स्वभाव, उसका मनोहारी गोपाल वेश और साथ मे उसकी सुन्दर मुखाकृति, घुंघराले केश, अरुणाभ नयन तथा नन्हे नन्हे पैरो से उसका ठुमक-ठुमक कर चलना, यह सब नन्द के गोकुल की ग्वालनियो के लिए जादुई आकर्षण है।

कामदेव के समान सुरूपवान वह बाल गोपाल उनका मन हर लेता है। हिन्दी जैन कवि गोपाल वेशधारी बालक कृष्ण के इस प्रभाव का गोपी के शब्दो मे इस प्रकार वर्णन करता है—

> **मुकुट धर मोरनो, मुझ मन हर लीनो रे।**
> **कामणगारो कान्हडो, मो पै जादू कीनो रे ॥**
> **ठुम ठुम चाल सुहावनी, अणियाली आंखडल्या रे।**
> **घुघरवाला केश है, जुल्फें बाकडल्या रे ॥[11]**

इस प्रकार नन्द गोप के पुत्र कृष्ण की बाल्यावस्था का यह वर्णन आठवी शताब्दी ई० के लगभग से जैन-साहित्यिक कृतियो मे ग्राह्य हुआ और सस्कृत, अपभ्र श तथा हिन्दी की जैन कृतियो मे स्थान पाता रहा है परन्तु यह समस्त तथ्य कथन जैसा है। इस कथन मे भी बालक कृष्ण की चपलता तथा गोपाल वेश धारण करने की बात ही कही गयी है।

□□

सन्दर्भ-तालिका

कृष्ण-चरित वर्णन पृष्ठभूमि

१ जैन परम्परा मे काल को अनादि-अनन्त चक्र माना गया है। यह चक्र सुख से दुख की ओर और दुख से सुख की ओर अनवरत घूमता रहता है। सुख स दुख की ओर गतिमान कालखण्ड अवसर्पिणी तथा दुख से सुख की ओर गतिमान कालखण्ड उत्सर्पिणी कहलाता है।

२ जैन कृतियो म त्रपठ शलाकापुरुषो के नाम है—

चौबीस तीर्थकर—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी।

बारह चक्रवर्ती—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त।

नौ बलभद्र—विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नान्दी, नन्दिमित्र, राम और बलराम।

नौ वासुदेव—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयभू, पुरुषोत्तम, नृसिह, पुण्डरीक, दत्तक, लक्ष्मण और कृष्ण।

नौ प्रतिवासुदेव—अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासन्ध।

३ गगासिधुणई हि वेयड्ढगेण भरहखत्तम्मि। छक्खण्ड सजाद ताण विभाग परूवमो। उत्तरदक्खिण भरहे खडाणि तिण्णि होति पतेक्क। दक्खिण तिय खडेसु अजाखण्डोत्ति मज्झिओ।—तिलोयपण्णत्ति ४/२६६-२६७

४ यह प्रसग महाभारत के 'खिल पर्व' कहे जानेवाले हरिवश-पुराण मे भी आया है। युद्ध-भूमि मे पौण्ड्रक कृष्ण से कहता है—

स तत पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच हि।
भो भो यादव गोपाल इदानी क्व गतो भवान्॥

त्वां द्रष्टुमय सम्प्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ।
हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वित ॥
अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ।
यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥

५ कृष्ण को कैद करने की दुर्योधन की योजना की जानकारी मिलने पर विदुर का उद्बोधन—

सौमद्वारे दानवेन्द्रो द्विविदो नाम नामत ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम ॥४१॥
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतु नाशकच्चैन त प्रार्थयसे बलात् ॥४२॥
प्राग्ज्योतिषगत शौरिर्नरक सह दानवै ।
ग्रहीतु नाशकत् तत्र त त्व प्रार्थयसे बलात् ॥४३॥
अनेक-युगवर्षायुर्निहत्य नरक मधे ।
नीत्वा कन्या-सहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥४४॥
निर्मोचने षट् सहस्रा पाशैर्बद्धा महासुरा ।
ग्रहीतु नाशकश्चैन त त्व प्रार्थयसे बलात् ॥४५॥
अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा ।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥४६॥
अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबल ।
अश्वराजश्च निहत कसश्चारिष्टमाचरन् ॥४७॥
जरासन्धश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
बाणश्च निहत सख्ये राजानश्च निषूदिता ॥४८॥
वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा ।
पारिजात च हरता जित साक्षाच्छचीपति ॥४९॥
एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हत ॥५०॥
अय कर्ता न क्रियते कारण चापि पौरुषे ।
यद् यदिच्छेदय शौरिस्तत् तत्कुर्यादयत्नत ॥५१॥
त न बुद्ध्यसि गोविन्द घोरविक्रममच्युतम् ।
आशीविषमिव क्रुद्ध तजोराशिमनिन्दितम ॥५२॥
प्रधर्षयन् महाबाहु कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
पतगोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यति ॥५३॥

—महाभारत उद्योगपर्व १३०/४१-५३

६ ओयसी तेयसी वच्चसी जससी छायसी कता सोभा सुभगा
पियदसणा सुरुआ सुहसीलसुहाभिगमसव्वजणणयणकता
ओहबला अतिबला महाबला अनिहिता अपराइया
सत्तुमद्दणा रिपुसहस्समाणमद्दणा माणुकोसा अमच्छरा
अचवला अचण्डा पिय मज्जुलपलावहसिया गभीर
मधुरपडिपुण्णसच्चवयणा अव्भुवगय वच्छला सरण्णा लक्खण
वजण गुणोववया माणुम्माणपमाण पडिपुण्ण सुजाय सव्वग
सुदरगामसि सोभागारकत जियदमणा महाधणु
विकटठया महासत्तसायरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा
जुद्धकित्तिपुरिसा विपुलकुलसमुभवा महारणविहाडगा
अद्धभरहसामी राजकुलवसतिलया अजिया अजियरहा
पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिदा नरवसहा
मरुपवसमकप्पा अब्भहियरायतेय लच्छीए दिप्पमाणा

—समवायागसूत्र २०७

७ (क) ज्ञातृधर्म कथा श्रुतस्कन्ध २, अध्ययन ५, (थावच्चा-पुत्र का प्रसग)
(ख) अन्तकृद्दशा प्रथम वर्ग प्रथम अध्ययन (गौतमकुमार का प्रसग) और
वर्ग ३ अध्ययन ८ (गजसुकुमार का आख्यान)

८ अथ य तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणा ।

छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

९ तद्धैतद् घोर आगिरस कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्ते वेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवत । —छान्दोग्य उपनिषद ३।१७।६

(सानुवाद शाकरभाष्य सहित, गीता प्रेस)

१० भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध, पृ० ३२ ।
हिन्दी अनुवाद—प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

कृष्ण-चरित सम्बन्धी कृतियाँ

१ श्वेताम्बर मान्यतानुसार पाँच श्रुतकेवली है—प्रभवस्वामी, शय्यभव, यशोभद्र, सम्भूतविजय और भद्रबाहु ।
दिगम्बर मान्यतानुसार—आर्य विष्णु (नन्दि), नन्दिमित्र, अपराजित, आचार्य गोवर्धन और भद्रबाहु ।

२ जैन धर्म प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, पृ० ४०५

३ जैन धर्म लेखक—कैलाश चन्द्र शास्त्री, पृ० २४९-२५०

४ आगम-साहित्य के सकलन के प्रयत्न हुए—
प्रथम—महावीर निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई० सन्-पूर्व ३६७ मे) स्थूल-भद्राचार्य की अध्यक्षता मे, पाटलीपुत्र मे। द्वितीय—ई० मन् ३२७-३४० के मध्य, मथुरा मे, स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता मे एव तृतीय—ई० मन् ४५३-४६६ के मध्य, बल्लभी म, आचार्य देवर्द्धिगणि की अध्यक्षता मे। इस ममय यही सकलन उपलब्ध माना जाता है।

५ आगम-साहित्य का पर्यालोचन (मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल') मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८१२

६ जनागम-धर और प्राकृत वाडमय (मुनि श्रीहजारीमल स्मृति ग्रन्थ, लेखक—मुनिश्री पुण्यविजय), पृ० ७२०

७ समवायाग सूत्र सूत्र १८९

८ जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, भाग-४ पृ० ६

९ समवायाग सूत्र (टीका मुनिश्री घासीलालजी, प्रकाशक—अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार ममिति राजकोट।

१० ज्ञाताधर्म कथा, टीका मुनिश्री घासीलालजी, प्रकाशक—अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।

११ अतकृद्दशा, टीका मुनि श्री घासीलालजी, अ० भा० श्वे० स्था० जन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट।

१२ प्रश्न-व्याकरण, प्रकाशक अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट।

१३ निरयावलिका प्रकाशक अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।

१४ उत्तराध्ययन, वही

१५ प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० ३८१।

१६ शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिश पञ्चोत्तरेषूत्तरा
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्री मदवन्तिभूभृतिनृपे वत्सादिराजेऽपरा
सूर्याणामधिमण्डल जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ६६/५२)

१७ कल्याणै परिवर्धमानविपुलश्रीवर्धमाने पुरे।
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेष पुरा।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनार्वचने।
शान्ते शान्तगृहे जिनस्य रचितो वशो हरीणामयम् ११६०/५३

१८ हरिवंशपुराण : सम्पादकीय, पृ० ३

१९ लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः ।
हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवविचेष्टितम् ॥
चरितं नेमिनाथस्य द्वारवत्या निवेशनम् ।
युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणे ऽष्टौ शुभा इमे ॥
—हरिवंशपुराण, प्रथम सर्ग, श्लोक ७१-७२

२० जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी, पृ० १३७

२१ वही, पृ० १४०

२२ उत्तरपुराण—गुणभद्राचार्य, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

२३ उत्तरपुराण (प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ काशी) प्रस्तावना, पृ० ६

२४ जैन साहित्य और इतिहास श्री नाथूराम प्रेमी, पृ० ४१२

२५ जैन साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग ४) डा० गुलाबचन्द चौधरी, पृ० ७२-७६

२६ वही, पृ० ७६

२७ जैन साहित्य और इतिहास नाथूराम प्रेमी पृ० २११

२८ वही, पृ० १९७ व १९९

२९ तेरह जाइव कडे कुरु कडे कूणवीस सधीओ ।
तह सट्ठि जुज्झय कडे एव वाणउदि सधीओ ॥
छव्वरिसाइ तिमासा एयारस वासरा सयमुस्स ।
वाणवइ-संधि करणे वालीणो इत्तिओ कालो ॥
—रिट्ठणेमि चरिउ ९२ वी सधि

३० जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृ० २०३

३१ प्रभाचन्द्र और श्रीचन्द्र मुनि के टिप्पण ग्रन्थ उपलब्ध है—
जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृ० २३६

३२ पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित एव माणिक चन्द्र जैन ग्रन्थमाला से तीन खण्डो मे मूल प्रकाशित। भारतीय ज्ञानपीठ से हिन्दी अनुवाद सहित छह भागो मे प्रकाशित हो रहा है।

३३ जैन साहित्य और इतिहास। नाथूराम प्रेमी, पृ० २५०

३४ वही, पृ० २२५

३५ वही, पृ० २२९

३६ धणु तणुसमु मज्झु ण त गहणु, णेहु णिकारिमु इच्छमि ।
देवीसुअ सुदणिहि तेण इउ, णिलए तुहारए अच्छमि ॥२०॥

मज्झु कइत्तणु जिणपय भत्ति, पसरइ णउ णिपजीवियवित्ति ।

—उत्तरपुराण

३७ रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन—डा० राजाराम जैन, पृ० १८०-२०७

३८ हिन्दी रास काव्य (डा० हरीश), प्रकाशक—मगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० ८०

३९ प्रद्युम्न चरित प्रस्तावना, पृ० २६

४० प्रद्युम्नचरित, छन्द ५३९-४१

४१ राजस्थान के जैन सत व्यक्तित्व एव कृतित्व—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ८५

४२ एक प्रति श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मन्दिर धूलियागज आगरा मे उपलब्ध है जिसकी प्रतिलिपि सवत् १८०८ की है। दूसरी प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर मे है जिसकी प्रतिलिपि सवत् १७५९ की है।

४३ उत्तरपुराण (दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर, हस्तलिखित प्रति), पृ० ३०८, छन्द ९१-१०७।

४४ एक सहस अरु आठ सत बरष असीती और ।
या ही सवत् मो करी पूरण इह गुण गौर ।।

जैन साहित्य मे कृष्ण-कथा

१ सोरियपुरम्मि नयरे, आसिराया महड्ढिए ।
वसुदेवेत्ति नामेण, राय लक्खण सजुए ।।
तस्स भज्जा दुवे आसि रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोण्ह पि दो पुत्ता, इहा य राम-केसवा ।।

—उत्तराध्ययन २२/२, ६

२ समुविजयोऽक्षोभ्य स्तिमित सागरस्तथा ।
हिमवानचलश्चैव धरण पूरणस्तथा ।।
अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान् ।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती माद्री च विश्रुते ।।

—अन्तकृद्दशा १/१

३ चाणूरचूरगरिट्ठ वसभघाइणो, नागदप्पमहणाज मल्लज्जुण भजगा।
महासउणि पूयण रिपु कसमउगोऽगा जरासन्ध माण महणा॥
—प्रश्नव्याकरण, आस्रवद्वार अधर्मद्वार ४ ६

४ तत्थण बारबईए णयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया होत्था जाव पसासे माणे विहरइ। अण्णेसिं च बहूण राईसर जाव सत्यवाहप्पमिईण वेयड्ढगिरि सागरमेरागस्स दाहिणड्ढ भरहस्स आहे वच्च जाव विहरइ।
—निरयावलिका ५/५/१

५ अतकृद्दशाग सूत्र ३/८

६ अत्रान्तर मुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुदघुष्टमम्बर।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दन।
निहतश्च जरासन्धस्तच्चक्रेणैव सयुगे।
प्रतिशत्रुर्गुणद्वेषी वासुदेवेन चक्रिणा॥
—हरिवशपुराण (जिनसेन), सर्ग ५३, श्लोक १७-१८

७ अभिषिक्तौ तत सर्वैर्भूपैर्भूचरखैचरै।
भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ॥
—हरिवशपुराण सर्ग, ५३। श्लोक ४३

८ उद्दिश्य पाण्डवान् यान्तौ मथुरा दक्षिणामुभौ।
—हरिवशपुराण जिनसेन ६२/४

९ अन्तकृद्दशा ३/८ के अनुसार यह तथ्य देवकी को अर्हन् अरिष्टनेमि से ज्ञात हुआ।

१० वासुदेवपामुक्खाण बहूण रायसहस्साण आवसि करहे तेवि करेत्ता पच्चमिणाति। —ज्ञाताधर्म-कथा, अध्ययन १६ सूत्र २०

११ सोरियपुर वर्तमान उत्तर प्रदेश के शिकोहाबाद नगर से लगभग तेरह मील दूर बटेश्वर के पास स्थित था।

१२ पच पडवा दाहिणिल्ल वेलाअल तत्थ पडुमुदुर णिवेसतु मम अदिट्ठ सेवगा भवतु। —ज्ञाताधर्मकथा १६/३२

१३ महाभारत तथा बौद्ध घटजातक की कृष्णकथा परिशिष्ट मे दी गई है।

कृष्ण का स्वरूप-वर्णन

१ अन्तकृतदशाग सूत्र प्रथम वर्ग सूत्र ४-५

२ ज्ञाताधर्म कथा अध्ययन, १६ सूत्र १६

३ वही, सूत्र २०

४ हरिवंशपुराण (जिनसेन) सर्ग ३६, श्लोक ४५-४५

५ वही, सर्ग ५०, श्लोक ४

६ वही, सर्ग ५०, श्लोक १०-१४

७ वही, सर्ग ५०, श्लोक ४३

८ वही, सर्ग ५२ श्लोक ७८-७६

६ वही, सर्ग ५२ श्लोक ८३

१० वही, सर्ग ५३/१७

११ वही, सर्ग ५३/४३

१२ नेमिचन्द्र नेमीश्वररास, छन्द स० १२०, हस्तलिखित प्रति, उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१३ खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण १४-१५ प्रति उपलब्ध दिगम्बर जैन मन्दिर लूणकरण जी पाण्डया, जयपुर।

१४ नेमीश्वर रास, छन्द १८४, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१५ खुशालचन्द उत्तरपुराण, पन्ना १६६-२००, हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्र, भण्डार जयपुर।

१६ शालिवाहन हरिवंशपुराण, पन्ना ८५ हस्तलिखित प्रति, दिगम्बर जैन पल्लीवाल मन्दिर धूलियागज, आगरा।

१७ नेमिचन्द्र नेमीश्वर रास छन्द १७०-१७२, १७३। हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१८ सोमसुन्दर रगसागर नेमिफागु प्रथम खण्ड ३२-३६ (हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतिया सम्पादक डा० गोविन्द रजनीश, प्रकाशक—मगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३६-१४८

१६ सधारू प्रद्युम्नचरित (प्रकाशक—अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी प्र० का० समिति, जयपुर), छन्द ५१-५२।

२० शालिवाहन हरिवंशपुराण (अप्रकाशित, हस्तलिखित—आगरा प्रति, ५२

२१ वही, ५२/१६५८ तथा १६६३

२२ नेमिचन्द्र नेमीश्वर रास (आमेर शास्त्र भण्डार की प्रति)

२३ चौथमल भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, पद स० २४३-४५, ४८-४६।

२४ नेमिचन्द्र नेमीश्वर रास, छन्द ८६६

२५ शालिवाहन हरिवशपुराण—१८/२२

२६ प्रद्युम्नचरित १/२१

२७ देवेन्द्र सूरि गयसुकुमाल रास, छन्द ६

२८ देवेन्द्र सूरि प्रद्युम्न प्रबन्ध, २३-२४

२६ देवेन्द्र सूरि गजसुकुमाल रास, छन्द ५

३० पाण्डव यशोरसायन, पृ० २८५

३१ समय सुन्दर शाम्ब-प्रद्युम्न रास (हस्तलिखित प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर), ६-११

३२ यशोधर-बलिभद्र चौपई, ११-१३

३३ जयशेखर सूरि नेमिनाथ फागु २-३

३४ उत्तराध्ययन-सूत्र २२-२५

३५ अतकृद्दशाग सूत्र प्रथम सवर्ग, प्रथम अध्ययन

३६ वही, तृतीय वर्ग अष्टम अध्ययन

३७ वही

३८ ज्ञाताधर्मकथा, श्रुतस्कन्ध २, अध्ययन ५

३६ निरयावलिका, वर्ग ५, अध्ययन १

४० अन्तकृद्दशाग सूत्र पचम वर्ग, अध्ययन १ ८

४१ वही, वर्ग ४, अध्ययन ६-८

४२ वही, वर्ग ३, अध्ययन ८

४३ वही, वर्ग १-४ के विभिन्न अध्ययन

४४ अतकृद्दशाग-सूत्र, वर्ग ३, अध्ययन ३

४५. अन्तकृद्दशांग सूत्र, वर्ग ५, प्रथम अध्ययन

४६ अन्तकृद्दशांग सूत्र, वर्ग ५, प्रथम अध्ययन (पृ० २१६-२२०) आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना।

४७ हरिवंश पुराण (आचार्य जिनसेन), सर्ग ६१/१५-१६

४८ प्रद्युम्न चरित (सधारु), छन्द ६६५

४६ नेमीश्वर रासु नेमिचन्द्र छन्द ११०

५० वही, छन्द ११६८ एवं १२००

कृष्ण का बाल-गोपाल रूप

१ डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत (हिन्दी अनुवाद) पृ० ४०-४१। प्र० भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

२ वही, पृ० ४३

३ हरिवंशपुराण—आचार्य जिनसेन ३५/४३

४ पुष्पदन्त तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालकारु ८५/६

५ पुष्पदन्त तिसट्ठिमहापुरिस गुणालकारु ८५/१०

६ जिनसेन हरिवंशपुराण ३५/५५-५७

७ हरिवंशपुराण शालिवाहन, (हस्तलिखित प्रति), छन्द १७०७-८

८ नेमीश्वर रास नेमिचन्द्र, छन्द १६८

९ पाण्डव यशो रसायन मरुधर केसरी मुनिश्री मिश्रीमल, पृ० १७७/४७

१० नेमीश्वर रास नेमिचन्द्र, छन्द १६६ (हस्तलिखित प्रति)

११ पाण्डव यशोरसायन मुनि मिश्रीमल्ल, पृ० १७७

परिशिष्ट

(क) महाभारत की कृष्णकथा

पृथ्वी के दुख से दुखी होकर देवगण तथा ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की। उन भगवान् ने लोक-कल्याण के लिए तथा पृथ्वी पर मानस रूप मे उत्पन्न दैत्यो का नाश करने के लिए यदुवश मे वसुदेव-देवकी के यहाँ कृष्ण रूप मे अवतार लिया। उनका जन्म यदुवश की वृष्णि शाखा मे हुआ था। बलरामजी उनके बडे भ्राता थे तथा पाण्डवो की माता कुन्ती उनकी बुआ थी।

कृष्ण बडे ही पराक्रमी वीर पुरुष थे। बाल्यकाल मे ही उन्होने पूतना, बकासुर, केशी, वृषभासुर, शकटासुर आदि दुष्टो का वध किया। गायो की रक्षा के लिए उन्होन गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया। किशोरावस्था मे मथुरा के राजा कस के महान् शक्तिशाली मल्ल चाणूर का वध किया। कृष्ण ने द्वारिका नगरी म अपने कुल का राज्य स्थापित किया। यह नगरी पश्चिमी समुद्रतट पर थी। द्रौपदी के स्वयवर के समय कृष्ण अनेक वृष्णिवशी वीरो के साथ द्वारिका से आये थे। अर्जुन के लक्ष्यभेद करने पर तथा द्रौपदी द्वारा उनके गले मे जयमाला डाल देने पर जब कौरव पक्ष के लोग उनसे युद्ध करने को तत्पर हुए तब कृष्ण न वहाँ उपस्थित सभी राजा-महाराजाओ को समझाया। अन्धक और वृष्णिवशी वीरो के नेता कृष्ण को न्याय का पक्ष लेते देखकर सभी राजाओ ने युद्ध की बात छोडकर चुपचाप अपने-अपने घर की राह पकडी।

धृतराष्ट्र के बुलाने पर जब पाण्डवगण हस्तिनापुर गये तब कृष्ण भी उनके साथ वहाँ गये। युधिष्ठिर के लिए खाण्डवप्रस्थ मे इन्द्रप्रस्थ नगरी का निर्माण कृष्ण की कृपा से हुआ। पाण्डवो को धृतराष्ट्र द्वारा प्रदत्त राज्यो मे सब प्रकार से सुस्थिर करके कृष्ण द्वारिका लौटे। तत्पश्चात् प्रभास तीर्थ मे अर्जुन के आगमन पर कृष्ण उससे मिलने वहाँ गये। वे उसे लेकर द्वारिका गए। इसी अवसर पर कृष्ण के सकेत से अर्जुन ने उनकी बहिन सुभद्रा का अपहरण किया तथा बाद मे दोनो का विवाह सम्पन्न हुआ। खाण्डव-वन दाह मे कृष्ण ने अर्जुन की सहायता की। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए उन्होने भीम द्वारा मगध के शक्तिशाली नरेश जरासन्ध का वध करवाया। उन्होने जरासन्ध के पुत्र

सहदेव को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। राजसूय यज्ञ के अवसर पर उपस्थित सभी राजाओ मे वे ही सर्वप्रथम वन्दनीय माने गये। उनकी इस प्रतिष्ठा का शिशुपाल ने विरोध किया तथा कृष्ण के लिए कटुवचन कहे। अप्रसन्न हुए कृष्ण ने उपस्थित सभी राजाओ के समक्ष चेदि देश के राजा शिशुपाल का शिरच्छेद कर दिया।

युधिष्ठिर को कौरवो द्वारा द्यूत-क्रीडा मे हराये जाने पर जब दु शासन द्रौपदी को भरी सभा मे खीचकर ले आया तथा उसके चीरहरण का प्रयास किया तब कृष्ण ने ही उसकी रक्षा की। पुन द्यूतक्रीडा मे युधिष्ठिर को फँसाकर जब पाण्डवो को बारह वर्ष का बनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास मिला तब भी कृष्ण वन मे पाण्डवो से मिलने गये तथा कौरवो की, इस कृत्य के लिए, निन्दा की। बनवास व अज्ञातवश की अवधि पूर्ण हो जाने पर विराट-नरेश की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कृष्ण विराट नगर आये तथा पाण्डवो की पुन राज्यप्राप्ति की न्यायोचित माँग के लिए अपना समर्थन व्यक्त किया। दुर्योधन द्वारा इस माँग को अस्वीकार किए जाने पर दोनो पक्षो मे युद्ध की तैयारी होने लगी। कृष्ण इस युद्ध को टालने के लिए तथा दोनो पक्षो मे शान्ति स्थापना के लिए पाण्डवो की ओर से दूत बनकर कौरव-सभा मे गये। लेकिन अपने उद्देश्य मे वे सफल न हो सके। कालान्तर म कुरुक्षेत्र के मैदान मे कौरव-पाण्डवो मे भीषण युद्ध हुआ जो महाभारत के नाम से विख्यात है। इस युद्ध मे कृष्ण ने अर्जुन के सारथी के रूप मे पाण्डवो की सहायता की।

युद्ध-क्षेत्र मे अपने बन्धु-बान्धवो, सगे-सम्बन्धियो को आमने-सामने लडने-मरने को तत्पर देखकर अर्जुन युद्ध से उदास हो गये। युद्ध की निरर्थकता व जीवन की क्षणभगुरता को प्रत्यक्ष देख, मोहग्रस्त हो, उन्होने युद्ध करने से इकार कर दिया। तब कृष्ण ने अर्जुन के मोह को दूर करने तथा उस कर्मक्षेत्र मे प्रवृत करने के लिए तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। महाभारत का भीषण युद्ध पूरे अठारह दिन तक चला। कृष्ण की सूझ-बूझ, नीति-कुशलता तथा प्रेरणा से पाण्डवगण युद्ध मे विजयी हुए। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो जाने पर कृष्ण यादव वीरो सहित द्वारिका लौट गये। पुन युधिष्ठिर के अश्वमेध के अवसर पर वे हस्तिनापुर आये। उसी समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न बालक को, जो कि मृतक समान था, कृष्ण ने जीवित किया तथा उसका परीक्षित नामकरण किया।

महाभारत के मौसल पर्व मे कृष्ण के परमधाम गमन से सम्बन्धित जो विवरण है उसके अनुसार महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष पश्चात् विश्वामित्र, कण्व, नारद आदि के शाप से कृष्ण के पुत्र साम्ब से एक महाविकट मूसल उत्पन्न हुआ। इस समय तक भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादववशी वीरो का चरित्र मद्यपान आदि

दुर्गुणों से अत्यधिक भ्रष्ट हो गया था। कृष्ण ने द्वारिका मे मद्य-निषेध करा दिया था। साम्ब से उत्पन्न मूसल को चूर्ण करके समुद्र किनारे फिकवा दिया गया। परन्तु इस सावधानी के बाद भी काल यदुवशियो के पीछे ही घूम रहा था। एक दिन कृष्ण की आज्ञा से सभी यदुवशी प्रभास तीर्थ गये। वहाँ अत्यधिक मद्यपान से भ्रष्ट चित्त होकर परस्पर विवाद करते हुए वे लडने लगे। मूसल के चूर्ण से उत्पन्न घास एरका (जिसका कि तिनका हाथ मे आते ही मूसल बन जाता था) से लडकर सभी यदुवशी विनाश को प्राप्त हुए। बलराम जी ने योग धारणकर समाधिमरण प्राप्त किया। वन मे अकेले भटकते हुए कृष्ण जब आराम करने के लिए पृथ्वी पर लेटे तो मृग के धोखे मे जरा नामक व्याध ने अपने तीक्ष्ण तीर से उन्हे घायल कर दिया। कृष्ण परमधाम सिधार गये। यादवो का विनाश सुन अर्जुन द्वारिका आये। यादव स्त्रियो, बच्चो तथा वृद्धो को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ की ओर रवाना हो गये। उनके जाने के पश्चात् द्वारिकापुरी धीरे धीरे समुद्र मे ही समा गयी।

(ख) घटजातक की कृष्णकथा

प्राचीन काल मे उत्तरापथ के कसभोग राज्यान्तर्गत असितजन नगर मे मकाकस नामक राजा राज्य करता था। उसके कस और उपकस नामक दो पुत्र थे और देवगम्भा नामक पुत्री थी। पुत्री के जन्म के समय ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि इसके पुत्र से कस के वश का नाश होगा। राजा मकाकस स्नेहाधिक्य के कारण पुत्री को मरवा नही सका, पर यह भविष्यवाणी सभी जानते थे। मकाकस के मरने पर उसका पुत्र कस राजा हुआ और उपकस उपराजा। उन्होने विचार किया—यदि हम बहिन को मारेगे तो निन्दा होगी अत इसे अविवाहित रखे जिससे इसके सन्तान ही नही होगी। उन्होने अपनी बहिन के निवास के लिए पृथक् मकान बना दिया और उसकी पहरेदारी पर नन्दगोपा और उसका पति अधकवेणु नियुक्त कर दिये।

उस समय उत्तर मथुरा में महासागर नाम का राजा राज्य करता था। उसके सागर और उपसागर दो पुत्र थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सागर राजा हुआ और उपसागर उपराजा। उपसागर और उपकस दोनो मित्र थे। उनकी पढाई एक ही आचार्यकुल मे साथ-साथ हुई थी। उपसागर ने अपने भाई के अन्त पुर मे कोई दुष्टता की अत वह भाई के भय से मथुरा से भागकर असितजन नगर मे अपने मित्र उपकस के पास चला गया। कस-उपकस ने उसे आदर के साथ अपने यहाँ रखा। उपसागर ने किसी दिन देवगम्भा को देख लिया और दोनो मे प्रेम हो गया। नदगोपा की सहायता से व दोनो एकान्त मे मिलने

लगे। देवगम्भा गर्भवती हो गयी। रहस्योद्घाटन हो जाने पर कंस उपकंस ने उपसागर को अपनी बहिन इस शर्त पर विवाह दी कि यदि उससे कोई लडका होगा तो वे उसे मार देंगे। देवगम्भा ने लडकी को जन्म दिया। उसका नाम अजनदेवी रखा गया। कंस ने गोवड्ढमान नामक ग्राम उपसागर को दे दिया। वह अपनी पत्नी देवगम्भा तथा सेवक, सेविका अंधकवेणु-नन्दगोपा सहित वहाँ रहने लगा।

कुछ समय पश्चात् संयोगवश देवगम्भा और नन्दगोपा—दोनो साथ-साथ गर्भवती हुई। देवगम्भा के पुत्र हुआ तथा नन्दगोपा के पुत्री। भाइयो द्वारा पुत्री को मार देने के भय से देवगम्भा ने उसे नन्दगोप को दे दिया और उसकी पुत्री स्वयं ले ली। इस प्रकार देवगम्भा के क्रमश दस पुत्र हुए और नन्दगोपा के दस पुत्रियाँ। देवगम्भा के सभी पुत्र नन्दगोपा के पुत्र प्रसिद्ध हुए और वे 'अंधकवेणु दासपुत्र' के नाम से पहचाने गये। उनके नाम इस प्रकार है—(१) वासुदेव, (२) बलदेव, (३) चन्द्रदेव, (४) सूर्यदेव, (५) अग्निदेव, (६) वरुणदेव, (७) अर्जुन, (८) प्रद्युम्न, (९) घटपडित, और (१०) अंकुर।

वे दसो पुत्र बडे होने पर लूटमार करने लगे। लोगो ने राजा कंस से निवेदन किया। राजा ने अंधकवेणु को बुलवाया। उसने भयभीत होकर सारा भेद बता दिया कि वे मेरे पुत्र नही है, देवगम्भा-उपसागर के पुत्र है। कंस यह सुनकर भयभीत हुआ तथा उसने अपने अमात्यो से विचार-विमर्श किया। यह निश्चय किया गया कि उन्हे मल्लशाला मे बुलवाकर राजकीय मल्लो द्वारा मरवा दिया जाए। राजा ने उन्हे मल्लयुद्ध के लिए बुलवाया तथा अपने मल्ल चाणूर और मुष्टिक से मल्लयुद्ध करने को कहा। बलदेव ने बात ही बात मे चाणूर और मुष्टिक को मार डाला। तत्पश्चात कंस स्वयं मारने को उठा परन्तु वासुदेव ने चक्र से कंस और उपकंस दोनो भाइयो को मार दिया।

उन्होने असितंजन नगर और कंसभोग राज्य पर अधिकार कर लिया और अपने माता-पिता को गोवड्ढमान से बुला लिया। फिर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त करने को वहाँ से निकल पडे। प्रथम, उन्होने अयोध्या के राजा कालसेन को पराजित कर उसका राज्य अधिकार मे ले लिया। उसके पश्चात् वे द्वारवती पहुँचे, जहाँ एक ओर समुद्र और दूसरी ओर पर्वत था। वहाँ के राजा को मार कर उन्होने द्वारवती पर भी अधिकार जमा लिया। धीरे-धीरे उन्होने जम्बूद्वीप के तेसठ हजार नगरो के समस्त राजाओ को चक्र से मारकर उनके राज्यो को अपने अधिकार मे ले लिया। उसके बाद उन्होने समस्त राज्य को दस भागो मे बाट लिया। नौ भाग नौ भाइयो को मिले। दसवे अँकुर ने राज्य नही लिया। वह व्यापार मे लग गया। उसका राज्य बहिन अजनदेवी को दिया गया। रोहिणोय्य उनका अमात्य था। अन्त मे, वासुदेव महाराज का प्रिय पुत्र मृत्यु को

प्राप्त हुआ। उससे वे बहुत दुखी हुए। उनके भाई घट पण्डित ने बडे कौशल से उनका पुत्रशोक दूर किया।

वासुदेवादि दस भाइयो की सन्तानो ने कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती नारी बताकर सन्तान के विषय मे पूछा। कृष्ण द्वीपायन ने उनका विनाश काल निकट जानकर कहा कि इसमे एक लकडी का टुकडा उत्पन्न होगा और उससे वासुदेव के कुल का नाश होगा। तुम लकडी जला देना तथा उसकी राख नदी मे फेंक देना। अन्त मे, उसकी राख से उत्पन्न अरण्ड के पत्तो द्वारा सब लोग परस्पर लडकर मर गये। मुष्टिक ने मरकर यक्ष के रूप मे जन्म ग्रहण किया। वह बलदेव को खा गया। वासुदेव अपनी बहिन और पुरोहित को लेकर वहाँ से चला गया। मार्ग मे जरा नामक शिकारी ने भ्रम से वासुदेव पर शक्ति फेंक कर उसे घायल कर दिया जिसमे उसका प्राणान्त हो गया।

(ग) सन्दर्भ साहित्य

[नोट—सूची अकारादि क्रम से है। कोष्ठक मे पुस्तक की भाषा दी गयी है।]

अन्तकृद्दशाग सूत्र (प्राकृत)
अपभ्रंश साहित्य (हिन्दी)—डॉ० हरिवश कोछड
आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ (हिन्दी)—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
उत्तरपुराण (महापुराण सस्कृत)—गुणभद्राचार्य
उत्तरपुराण (हिन्दी, हस्तलिखित)-खुशालचन्द काला
उत्तराध्ययन सूत्र (प्राकृत)
गयसुकुमाल रास (हिन्दी)—देवेन्द्रसूरि (देल्हण)
छान्दोग्य उपनिषद् (सस्कृत)
जातक चतुर्थखण्ड (पाली)
जैनधर्म (हिन्दी)—प० कैलाश चन्द्र शास्त्री
जैनधर्म का मौलिक इतिहास (हिन्दी)—आचार्य हस्तीमलजी
जैन साहित्य और इतिहास (हिन्दी)—नाथूराम प्रेमी
तिलोयपण्णति (प्राकृत)
दि एनालस एण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान (अँग्रेजी)
—कर्नल जेम्स टाड
निरयावलिका (प्राकृत)
नमिचन्द्रिका (हिन्दी हस्तलिखित) मनरगलाल
नेमिनाथ फागु (हिन्दी हस्तलिखित) जयशेखर सूरि
नेमीश्वर रास (हिन्दी हस्तलिखित) नेमिचन्द्र
नेमनाथ रास (हिन्दी) सुमतिगणि
नेमिनाथ चरित्र (हिन्दी-हस्तलिखित) अजयराज पाटनी
नेमीश्वर की बोली (हिन्दी हस्तलिखित) कवि ठाकुरसी

नेमीश्वर चन्द्रायण (हि० • हस्त०)—नरेन्द्र कीर्ति
प्रद्युम्न चरित (हि० हस्त०) मन्ना लाल
प्रद्युम्न रासो (हि० हस्त०) ब्रह्म रायमल्ल
प्रद्युम्न चरित (स०)—महासेन
प्रद्युम्न चरित (हि०)—मधारु
प्रद्युम्न चरित (हि० हस्त०)—देवेन्द्र कीर्ति
प्रश्न व्याकरण (प्रा०)
प्राचीन भारत की सभ्यता और सस्कृति—दामोदर धर्मानन्द कौसाम्बी
पाण्डवपुराण (अपभ्र श)—यशकीर्ति
पाण्डवपुराण (स०)—शुभचन्द्र
पाण्डव पुराण (हि०)—बुलाकी दास
पाण्डव यशोरसायन (हि०)—मुनि मिश्रीमल
बलिभद्र चौपई (हि० हस्त०)—यशोधर
बलभद्रबली (हि० हस्त०) कवि सालिग
भगवद् गीता (स०)
भारतीय सस्कृति और अहिसा—धर्मानन्द कौसाम्बी
मध्यकालीन धर्म साधना (हि०)—हजारी प्रसाद द्विवदी
महाभारत (स०) मुनिश्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ (हि०)
रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (हि०)—डॉ० राजाराम जैन
राजस्थान मे जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थसूची भाग १,२,३,८
(प्रका०)—प्रबन्धकारिणी समिति श्री महावीर जी क्षेत्र, जयपुर)
राजस्थानी नमि साहित्य (हि०) – डा० नरेन्द्र भानावत
रिट्ठणेमि चरिउ (अप०)—स्वयभू
वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर रिलीजीयस सिस्टम्स(अ)—डॉ० आर जी भण्डारकर
समवायाग सूत्र (प्रा०)
सूर साहित्य—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
शम्ब-प्रद्युम्न रास (हि० हस्तलिखित)
श्री मद्भागवत पुराण (स०)
हरिवशपुराण (स० वैष्णव पुराण)
हरिवश पुराण (तिसट्ठिमहापुरिसगुणालकारु अपभ्र श)—पुष्पदन्त
हरिवशपुराण (हि०—हस्हलिखित) —शालिवाहन
हरिवशपुराण हि०—हस्तलिखित)—खुशालचन्द काला
त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र (स०)—हेमचन्द्राचार्य
ज्ञातृधर्म कथा (प्रा०)